॥ श्रीहरिः ॥

139

नित्यकर्म-प्रयोग

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

दूसरे संस्करणका निवेदन

कई वर्ष पहलेसे यह विचार हो रहा था कि नित्यकर्मकी एक ऐसी पुस्तक अर्थसहित प्रकाशित की जाय, जिसमें आह्निक कृत्योंके सम्बन्धमें होनेवाले कई विवादग्रस्त प्रश्नोंका शास्त्रीय सिद्धान्तके अनुकूल निर्णय किया गया हो। हमें पता लगा था कि मारवाड़ी संस्कृत कालेज, बनारसके प्रिन्सिपल पूज्यचरण पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री संध्या और तर्पण आदिके विषयमें काशीके विद्वानोंद्वारा कई संदिग्ध बातोंका निर्णय करा रहे हैं। हमलोगोंके अनुरोधसे पूज्य शास्त्रीजीने संध्या, तर्पणादिकी पुस्तकके सम्पादनका भार स्वीकार कर लिया, परंतु कई कारणोंसे यह कार्य शीघ्र पूरा न हो सका। इस कार्यमें शास्त्रीजीके समक्ष कई कठिनाइयाँ आयीं, पर यथासम्भव वे अपने प्रयत्नमें लगे रहे। शास्त्रीजीका कहना है कि ''इस विषयका अनुसंधान प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्रीके जीवनकालसे ही हो रहा है। उन दिनों मुद्रित संध्याकी प्रतियोंमें अनेक पाठभेद मिलनेके कारण हमलोगोंको बड़ा संदेह होने लगा था और तभीसे तथ्य पाठका पता लगानेके लिये प्रयत्न आरम्भ किया गया। इस कार्यके लिये ऐसे विद्वानोंकी आवश्यकता थी, जो वैदिक कर्मकाण्डके पारदर्शी होनेके साथ ही इस विषयका निर्णय करनेमें उत्साह एवं रुचि रखते हों। उन दिनों पूज्यपाद महामहोपाध्याय पण्डित श्रीप्रभुदत्तजी महाराज इस विषयके बड़े ही विद्वान् थे, उनसे उपर्युक्त उद्देश्यके सिद्ध होनेकी आशा की जा सकती थी। महामहोपाध्यायजीके द्वारा उन दिनों बहुत बातोंका निर्णय हुआ। । अस्तु,

शास्त्रीजीने जो कुछ भी निर्णय कराया, वह उनके ही पास रह गया था, उसके अनुसार कोई प्रति प्रकाशित नहीं हुई थी। कुछ वर्ष पहले श्रीमान्य पण्डित श्रीमाधवजी भाण्डारीने अपने गुरुदेव महामहोपाध्याय पूज्यचरण श्रीनित्यानन्दजी पर्वतीयकी, जो काशीके सुप्रसिद्ध पण्डित थे, सहायतासे

एक नित्यकर्मपद्धतिका सम्पादन किया। उसमें प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयोंपर विस्तृत विचार किया गया है तथा उससे द्विजातियोंका बड़ा लाभ हो रहा है, किंतु उसमें भी ऋषि, छन्द और देवता आदिके विषयमें होनेवाली परम्परागत भूल नहीं दूर की गयी। काशी हिंदू-यूनिवर्सिटीके सम्मान्य प्रोफेसर पण्डित श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिककी कृपासे संध्याकी एक बृहत् पुस्तक हमें प्राप्त हुई थी, जो प्रयागसे प्रकाशित है, उसमें भी संध्याके विभिन्न अङ्गोंपर विस्तृत विवेचन है। परंतु पूर्वोक्त कमीकी पूर्ति उसमें भी नहीं है। अतः पुनः एक शुद्ध प्रति प्रकाशित करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसमें ऋषि, छन्द और देवता आदिके सम्बन्धमें प्रामाणिक निर्णय हो और जो मन्त्रसम्बन्धी पाठभेद उपलब्ध होते हैं, उनमेंसे निश्चित पाठका पता लगाकर वही रखा जाय। साथ ही उपर्युक्त प्रतियोंकी भाँति संध्याके विषयमें अन्य ज्ञातव्य बातोंका भी संकलन रहे, किंतु अनपेक्षित विस्तार न करके यथासम्भव संक्षेपसे ही सब बातोंपर प्रकाश डाला जाय।

इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हमारी प्रार्थनापर कई वर्ष पहले पूज्य पण्डित श्रीमदनमोहनजी शास्त्रीने पूज्यचरण पं॰ श्रीविद्याधरजी शास्त्री, वेदाचार्य (प्रोफेसर हिंदू-यूनिवर्सिटी) की सम्मतिसे संग्रह किये हुए कुछ संकेत संध्या-तर्पणके विषयमें हमारे यहाँ भिजवाये, जिनमें संध्याके विनियोग एवं ऋषि, छन्द आदिके विषयमें कुछ नूतन परिवर्तन किया गया था।

उसीके आधारपर हमने यहाँ संध्या और तर्पणकी एक पद्धति तैयार करवायी, परंतु परिवर्तन किस आधारपर किया गया, इसका कुछ उत्तर हमारे पास नहीं था। श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने हमलोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि प्रचलित पाठमें कुछ भी परिवर्तन होनेपर लोगोंके मनमें सहज ही शङ्का उत्पन्न हो सकती है, अतः उसका प्रमाण भी अवश्य ही यहाँ संकलित होना चाहिये। उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार संवत् १९९५ कार्तिकमें सम्मान्य पं॰ श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री काशी गये और मान्यवर पण्डित श्रीमदनमोहनजी शास्त्री तथा पूज्यपाद पं॰ श्रीविद्याधरजी गौड, वेदाचार्यकी सम्मतिसे प्रस्तुत पद्धति तैयार की। इसमें संध्या-तर्पण आदिके सम्बन्धमें अनेकों ज्ञातव्य विषयोंका समावेश हुआ है तथा बहुत-से शङ्कास्पद विषयोंका सप्रमाण निर्णय किया गया है। आगे भूमिकामें उन

सभी निर्णीत विचारों और प्रमाण-वचनोंका लेखबद्ध संकलन किया गया है। कुछ प्रमाण-वचन भूमिकाके मूलमें और कुछ प्रसंगानुसार टिप्पणीमें दिये गये हैं। मूलमें आये हुए वचनोंका पूरा अर्थ कहीं मूलमें ही और कहीं टिप्पणीमें दिया गया है तथा टिप्पणीमें उद्धृत किये जानेवाले वचनोंका न्यूनाधिकरूपमें भावार्थमात्र प्रायः मूलमें ही और कहीं-कहीं टिप्पणीमें भी दिया गया है।

इस कार्यमें श्रीवीरमित्रोदयके आह्निकप्रकाश, आह्निकसूत्रावली, कात्यायन-निर्मित वैदिक सर्वानुक्रमसूत्र एवं पिङ्गलसूत्रोंसे विशेष सहायता ली गयी है। पुस्तकमें जो प्रमाण उद्धृत किये हैं, उनमेंसे अधिकांश आह्निकसूत्रावली और आह्निकप्रकाश आदि ग्रन्थोंसे ही लिखे गये हैं। इन ग्रन्थोंको काशीकी पण्डितमण्डली पथप्रदर्शक और प्रामाणिक ही मानती है। इसलिये यदि उद्धृत किये गये वचन उन-उन मूल ग्रन्थोंमें न भी मिलें तो इनमें शङ्का करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वर्तमानमें सभी धर्मशास्त्र-ग्रन्थोंका पूरा-का-पूरा वास्तविक स्वरूप हमारे सामने उपलब्ध भी नहीं है। अनेक स्थलोंपर पण्डितप्रवर श्रीमाधवजी भाण्डारीकी नित्यकर्मपद्धतिसे भी वचन संगृहीत हुए हैं तथा कुछ स्थलोंपर सम्माननीय पं० श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीके एक लेख 'संध्यारहस्य' से तथा पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्यकी 'नित्यहोम और बलिवैश्वदेवविधि' नामक पुस्तकसे भी कुछ सहायता ली गयी है। एतदर्थ हम उक्त सभी महानुभावोंके कृतज्ञ हैं। संध्या तथा तर्पण आदिमें आये हुए वैदिक मन्त्रोंका अनुवाद सम्मान्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने सायण, उव्वट और महीधरभाष्य तथा अन्यान्य विद्वानों (पं० श्रीशेषकृष्ण और श्रीभट्टोजिदीक्षित आदि) के द्वारा की हुई व्याख्याके अनुसार किया है। इस प्रकार उपर्युक्त तीनों ही महानुभाव विद्वानोंके उद्योग और परिश्रमसे भूमिकासहित यह नित्यकर्मप्रयोगकी पद्धति तैयार हुई है। इसमें अर्थसहित संध्योपासन, नित्यहोम और तर्पणविधिके अतिरिक्त देवपूजा, बलिवैश्वदेव, ब्रह्मयज्ञ और भोजनप्रयोगका भी समावेश किया गया है। इसके सम्पादनका गौरवपूर्ण कार्य करके पूज्यचरण पं० श्रीविद्याधरजी शास्त्री, वेदाचार्य, श्रीमान्य पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री तथा सम्मान्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीने

द्विजातिमात्रका बड़ा ही उपकार किया है तथा काशीके बहुत-से सम्मान्य विद्वानोंने इस पद्धतिको देखकर अपनी बहुमूल्य सम्मतिसे इसका गौरव बढ़ानेकी कृपा की है। इसके लिये हम सदा ही इनके आभारी रहेंगे।

इस पुस्तकका दूसरा संस्करण प्रकाशित करते समय हमें अपने उन दो सम्माननीय विद्वानोंका स्मरण हो आना स्वाभाविक है, जिनका इस पुस्तकके सम्पादनमें महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी गौड, वेदाचार्यका तो प्रथम संस्करणके प्रकाशनसे पूर्व ही काशीवास हो चुका था और पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्रीका भी अब काशीवास हो चुका है। इसके लिये हमें हार्दिक खेद है। इन दोनों विभूतियोंके चले जानेसे धार्मिक जगत्‌की बड़ी हानि हुई।

अन्तमें द्विजातिमात्रसे यह प्रार्थना है कि वे इस पद्धतिको अपनायें और नित्यकर्मोंके पालनद्वारा भगवान्‌की आराधना करके अपने जीवनको सफल बनायें।

विनीत
प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

१-भूमिका १

२-सन्ध्योपासनविधि ४७

३-नित्यहोमविधि ६७

४-देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणविधि ७३

५-देवपूजाकी संक्षिप्त विधि ९६

६-बलिवैश्वदेवविधि १०३

७-ब्रह्मयज्ञविधि ११५

८-संक्षिप्त भोजन-प्रयोग ११९

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

शास्त्रोंका अवलोकन और महापुरुषोंके वचनोंका श्रवण करके मैं इस निर्णयपर पहुँचा कि संसारमें श्रीमद्भगवद्गीताके समान कल्याणके लिये कोई भी उपयोगी ग्रन्थ नहीं है। गीतामें ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं, उनमेंसे कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यताके अनुसार करनेसे मनुष्यका शीघ्र कल्याण हो सकता है।

अतएव उपर्युक्त साधनोंका तथा परमात्माका तत्त्व रहस्य जाननेके लिये महापुरुषोंका और उनके अभावमें उच्चकोटिके साधकोंका श्रद्धा, प्रेमपूर्वक सङ्ग करनेकी विशेष चेष्टा रखते हुवे गीताका अर्थ और भाव सहित मनन करने तथा उसके अनुसार अपना जीवन बनानेके लिये प्राणपर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये।

निवेदक—

कार्तिक शु॰ ११ । २००६ | जयदयाल गोयन्दका

गुवाहाटी

भूमिका

ॐकारप्रौढमूलः क्रमपदसहितश्छन्दविस्तीर्णशाख
ऋक्पत्रः सामपुष्पो यजुरधिकफलोऽथर्वगन्धं दधानः ।
यज्ञच्छायासमेतो द्विजमधुपगणैः सेव्यमानः प्रभाते
मध्ये सायं त्रिकालं सुचरितचरितः पातु वो वेदवृक्षः ॥

परमात्माको प्राप्त किये अथवा जाने बिना जीवनकी भवबन्धनसे मुक्ति नहीं हो सकती। यह सभी ऋषि-महर्षियोंका निश्चित मत है। उनके ज्ञानका सबसे सहज, उत्तम और प्रारम्भिक साधन है—संध्योपासना। संध्योपासना द्विजमात्रके लिये परम आवश्यक कर्म है। इसकी अवहेलनासे पाप होता है और पालनसे अन्तःकरण शुद्ध होकर परमात्मसाक्षात्कारका अधिकारी बन जाता है। तन-मनसे संध्योपासनाका आश्रय लेनेवाले द्विजको स्वल्पकालमें ही परमेश्वरकी प्राप्ति हो जाती है। अतः द्विजातिमात्रको संध्योपासनामें कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

संध्योपासनाका अर्थ

संध्योपासनामें दो शब्द हैं—संध्या और उपासना। संध्याका प्रायः तीन अर्थोंमें व्यवहार होता है—१-संध्याकाल, २-संध्याकर्म और ३-सूर्यस्वरूप ब्रह्म (परमात्मा)। तीनों ही अर्थोंके समर्थक शास्त्रीय वचन उपलब्ध होते हैं—

अहोरात्रस्य यः संधिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः ।
सा तु संध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः[१] ॥

(दक्षस्मृति)

१-सूर्य और नक्षत्रोंसे रहित जो दिन-रातकी संधिका समय है, उसे तत्त्वदर्शी मुनियोंने 'संध्या' कहा है।

****

—इस वचनमें संध्या शब्दका काल अर्थमें व्यवहार हुआ है।

संधौ संध्यामुपासीत नोदिते नास्तगे रवौ[१]**।**

(वृद्ध याज्ञवल्क्य)

'अहरहः संध्यामुपासीत'[२]**।**

(तैत्तिरीय॰)

तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे संध्यामुपासते[३]**॥**

(छब्बीसवाँ ब्राह्मण, प्रण॰ ४, खं॰ ५)

—इत्यादि वचनोंमें संध्याके समय किये जानेवाले परमेश्वरके ध्यानरूप प्राणायामादि कर्मोंको ही 'संध्या' बताया गया है। काल-वाचक अर्थमें 'संध्योपासना' शब्दका अभिप्राय है— संध्याकालमें की जानेवाली उपासना। दूसरे (कर्मवाचक) अर्थमें प्राणायामादि कर्मोंका अनुष्ठान ही संध्योपासना है। **'संध्येति सूर्यगं ब्रह्म'** (व्याससमृति)—इत्यादि वचनोंके अनुसार आदित्यमण्डलगत ब्रह्म ही संध्या शब्दसे कहा गया है। इस तृतीय अर्थमें सूर्यस्वरूप ब्रह्म (परमात्मा) की उपासना ही संध्योपासना है।

यद्यपि आचमनसे लेकर गायत्रीजपपर्यन्त सभी कर्म संध्योपसना ही हैं तथापि ध्यानपूर्वक गायत्रीजप संध्योपासनामें एक विशेष स्थान रखता है। क्योंकि—

पूर्वां संध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम्[४]**॥**

१- सूर्योदय और सूर्यास्तके कुछ पहले संधिवेलामें संध्योपासना करनी चाहिये।

२- 'प्रतिदिन संध्या करे।'

३- इसलिये ब्राह्मणोंको दिन-रातकी संधिके समय संध्योपासना करनी चाहिये।

४- सबेरे जब कि तारे दिखायी देते हों विधिपूर्वक प्रातःसंध्या आरम्भ करके सूर्यके दर्शन होनेतक गायत्रीजप करता रहे।

इस नरसिंहपुराणके वचनमें गायत्रीजपको ही प्रधानता दी गयी है।

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः[१]।

इत्यादि मनुवाक्यमें भी 'दीर्घसंध्य' शब्दसे दीर्घकालतक ध्यानसहित गायत्रीजप करनेकी ओर ही संकेत किया गया है, क्योंकि गायत्रीजप हजारोंकी संख्यामें होनेसे उसमें दीर्घकालतक प्रवृत्त रहना सम्भव है।

संध्योपासना नित्य और प्रायश्चित्त कर्म भी है

—यह संध्योपासना नित्य और प्रायश्चित्त कर्म भी है। '**अहरहः संध्यामुपासीत**' (प्रतिदिन संध्योपासना करें) इस प्रकार प्रतिदिन संध्या करनेकी विधि होनेसे तथा—

एतत् संध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम्।
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते[२]॥

(छान्दोग्यपरिशिष्ट)

—इस वचनके अनुसार संध्या न करनेसे दोषका श्रवण होनेके कारण संध्या नित्यकर्म है। तथा—

दिवा वा यदि वा रात्रौ यदज्ञानकृतं भवेत्।
त्रिकालसंध्याकरणात् तत्सर्वं च प्रणश्यति॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

अर्थात् 'दिन या रातमें अनजानसे जो पाप बन जाता है, वह सब-का-सब तीनों कालकी संध्या करनेसे नष्ट हो जाता है।'

—इस वचनके अनुसार पापध्वंसकी साधिका होनेसे संध्या

१-ऋषिलोगोंने दीर्घकालतक संध्या करनेके कारण ही दीर्घ आयु प्राप्त की थी।

२-यह त्रिकालसंध्याकर्मका वर्णन किया गया; जिसके आधारपर ब्राह्मणत्व सुप्रतिष्ठित होता है। इसमें जिसका आदर नहीं है—जो प्रतिदिन संध्या नहीं करता, वह [जन्मसे ब्राह्मण होनेपर भी कर्मभ्रष्ट होनेके कारण] ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।

***

प्रायश्चित्त कर्म भी है। द्विजमात्रको यथासम्भव प्रातः, सायं और मध्याह्न—तीनों कालोंकी संध्याका पालन करना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि—

नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः[१]॥

(मनु०)

—इस वचनमें प्रातः और सायं—इन्हीं दो संध्याओंके न करनेसे दोष बताया गया है, अतः प्रातः तथा सायंकालकी संध्या ही आवश्यक है, मध्याह्नकी नहीं। किंतु ऐसा मानना उचित नहीं है, कारण कि इस वचनद्वारा मनुजीने जो उक्त दो कालोंकी संध्या न करनेसे दोष बताया है, उससे उक्त समयकी संध्याकी अवश्यकर्तव्यतामात्र सिद्ध हुई। इससे यह नहीं व्यक्त होता कि मध्याह्न-संध्या अनावश्यक है, क्योंकि—

संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा[२]।

(अत्रिस्मृति)

—इत्यादि वचनके अनुसार मध्याह्न-संध्या भी आवश्यक ही है। शुक्लयजुर्वेदियोंके लिये तो मध्याह्न-संध्या विशेष आवश्यक है। आजकल बाजारोंमें 'क्षत्रिय-संध्या' और 'वैश्य-संध्या' के नामसे भी पुस्तकें बिकने लगी हैं, इससे लोगोंमें बड़ा भ्रम फैल रहा है। वैश्य और क्षत्रियोंके लिये कोई अलग संध्या नहीं है। एक ही प्रकारकी संध्या द्विजमात्रके उपयोगके लिये होती है।

संध्या करनेसे लाभ

जो लोग दृढ़प्रतिज्ञ होकर प्रतिदिन नियतरूपसे संध्या करते हैं,

१-जो प्रातः और सायं-संध्याका अनुष्ठान नहीं करता, वह सभी द्विजोचित कर्मोंसे शूद्रकी भाँति बहिष्कृत कर देनेयोग्य है।

२-आत्मवेत्ता द्विजको सदा त्रिकाल-संध्या करनी चाहिये।

वे पापरहित होकर अनामय ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं[१]। सायं-संध्यासे दिनके पाप नष्ट होते हैं और प्रातः-संध्यासे रात्रिके[२]। जो अन्य किसी कर्मका अनुष्ठान न करके केवल संध्याकर्मका अनुष्ठान करता रहता है, वह पुण्यका भागी होता है। परन्तु अन्य सत्कर्मोंका अनुष्ठान करनेपर भी संध्या न करनेसे पापका भागी होना पड़ता है[३]। जो प्रतिदिन स्नान किया करता है तथा कभी संध्याकर्मका लोप नहीं करता, उसको बाह्य और आन्तरिक दोनों ही प्रकारके दोष नहीं प्राप्त होते, जैसे गरुड़के पास सर्प नहीं जा सकते[४]।

संध्या न करनेसे हानि

जो संध्या नहीं जानता अथवा जानकर भी उसकी उपासना नहीं करता, वह जीते-जी शूद्रके समान है और मरनेपर कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है[५]। जो विप्र संकट प्राप्त हुए बिना ही संध्याका त्याग करता है, वह शूद्रके समान है। उसे प्रायश्चित्तका भागी और लोकमें निन्दित होना पड़ता है[६]। संध्याहीन द्विज अपवित्र होता है। उसका किसी भी

१-संध्यामुपासते ये तु नियतं संशितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥ (यमस्मृति)

२-पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन् नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥ (मनु०)

३-यस्तु तां केवलां संध्यामुपासीत स पुण्यभाक्।
तां परित्यज्य कर्माणि कुर्वन् प्राप्नोति किल्बिषम्॥ (याज्ञवल्क्य)

४-संध्यालोपस्य चाकर्ता स्नानशीलश्च यः सदा।
तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः॥ (कात्यायन)

५-संध्या येन न विज्ञाता संध्या नैवाप्युपासिता।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते॥ (याज्ञवल्क्य)

६-अनार्तश्चोत्सृजेद् यस्तु स विप्रः शूद्रसम्मितः।
प्रायश्चित्ती भवेच्चैव लोके भवति निन्दितः॥ ('')

द्विजकर्ममें अधिकार नहीं है। वह जो कुछ भी दूसरा कर्म करता है, उसका फल भी उसे नहीं मिलता[१]। जो द्विज समयपर प्राप्त हुए संध्याकर्मका आलस्यवश उल्लङ्घन करता है, उसे सूर्यकी हिंसाका पाप लगता है और मृत्युके पश्चात् वह उल्लू होता है[२]।

संध्याके लिये उत्तम देश और काल

संध्याके लिये वही स्थान उपयोगी है, जो स्वभावतः पवित्र और एकान्त हो, अपवित्र या कोलाहलपूर्ण स्थानमें मनकी वृत्तियाँ चञ्चल होती हैं और हृदयमें दूषित विचार उठते रहते हैं। एकान्त स्थान एकाग्रतामें सहायक होता है, पवित्र स्थान मनमें पवित्रता लाता है और पवित्र गन्ध तथा पवित्र वायुके संयोगसे स्वास्थ्य भी ठीक रहता है, साथ ही सद्विचारोंका उद्गम होता है। इसलिये स्थानकी पवित्रताके सम्बन्धमें विशेष ध्यान देना चाहिये। शास्त्रोंमें संध्याके लिये निम्नाङ्कित स्थानोंका निर्देश किया गया है—पुण्यक्षेत्र, नदीका तट, पर्वतोंकी गुहा और शिखर, तीर्थस्थान, नदीसंगम, पवित्र जलाशय, एकान्त बगीचा, बिल्ववृक्षके नीचे, पर्वतकी उपत्यका, देवमन्दिर, समुद्रका किनारा और अपना घर[३]।

स्थानके ही समान कालकी उत्तमताका भी ध्यान रखना चाहिये।

१-संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥ (दक्षस्मृति)

२-यः संध्यां कालतः प्राप्तामालस्यादतिवर्तते।
सूर्यहत्यामवाप्नोति ह्युलूकत्वमियात् स च॥ (अत्रि)

३-पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहां पर्वतमस्तकम्।
तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं सरः॥ (शारदा)
उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः।
देवाद्यायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम्॥
(आह्निकसूत्रावली)

प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व और सायंकाल सूर्यास्तसे पहले संध्याके लिये उत्तम समय है। श्रुति भी यही कहती है—

'अहोरात्रस्य संयोगे संध्यामुपास्ते सज्योतिषि आज्योतिषो दर्शनात्।'

अर्थात् 'दिन-रातकी संधिके समय संध्योपासना करे। सायंकालमें सूर्यके रहते-रहते संध्या आरम्भ करे और प्रातःकाल सूर्योदयके पहलेसे आरम्भ करके सूर्यके दर्शन होनेतक संध्योपासना करे।'

उपर्युक्त कालसे देर हो जानेपर गौण काल होता है, मुख्य नहीं रहता। मनुस्मृतिके अनुसार प्रातःसंध्यामें काल-विभाग यों समझना चाहिये—सूर्योदयसे पूर्व जबतक तारे दिखायी देते रहें, उत्तम काल है। ताराओंके छिपनेसे लेकर सूर्योदयकालतक मध्यम है, सूर्योदयके पश्चात् अधम काल है[१]। इसी प्रकार जब सूर्य दिखायी देते रहें, उस समय की हुई सायं-संध्या उत्तम होती है। सूर्यास्तके बाद ताराओंके उदयसे पहले की हुई संध्या मध्यम श्रेणीकी है और ताराओंके उदयके पश्चात् की हुई संध्या निम्न श्रेणीकी समझी जाती है। यह सायं-संध्याका काल-विभाग है[२]।

प्रातःसंध्यामें सूर्योदयके पश्चात् दो घड़ीतक गौणोत्तम काल माना गया है और सायं-संध्यामें सूर्यास्तसे तीन घड़ी बादतक गौणोत्तम काल है[३]। इसी तरह प्रातःकाल सूर्योदयके बाद और सायंकाल सूर्यास्तके बाद चार घड़ीतक गौण मध्यम काल माना गया है[४]।

१-उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा स्मृता॥ (मनु०)

२-उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा स्मृता॥ (")

३-सायंकाले त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः।
प्रातःकाले द्विघटिके तत्र संध्या समाचरेत्॥ (स्मृति-संग्रह)

४-चतस्रो घटिकाः सायं गौणकालोऽस्ति मध्यमः।
प्रातःकालेऽप्येवमेव संध्याकालो मुनीरितः॥ (")

***

गौण मध्यम कालतक यदि संध्या हो जाय तो काल-लोपके लिये प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। इससे अधिक देर होनेपर कालातिक्रमणका प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रायश्चित्त इस प्रकार है—**'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ओम् आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्'** ॥ यह मन्त्र पढ़कर सूर्यको चौथा अर्घ्य देना चाहिये[1] (तीन अर्घ्य तो नित्य दिये ही जाते हैं)। दिनका पाँच भाग करनेपर तीसरा और चौथा भाग मध्याह्नकालकी संध्याके लिये मुख्य है[2]। साधारणतया सूर्योदयके बाद अपराह्नकालतक मध्याह्न-संध्याका समय है। मध्याह्न-संध्या करनेवालेको प्रातःसंध्याके पश्चात् तुरंत भोजन नहीं करना चाहिये। ठीक समयपर मध्याह्न-संध्याका नियम पूरा करके ही करना उचित है। स्मृतिका वचन है—

स्नानसंध्यातर्पणादि जपहोमसुरार्चनम्।
उपवासवता कार्यं सायंसंध्याहुतीर्विना ॥

'केवल सायं-संध्या और सायंकालिक अग्निहोत्रके सिवा जो भी स्नान, संध्या, तर्पण आदि तथा जप, होम और देवार्चन आदि कार्य हैं, उनका भोजनके पहले ही अनुष्ठान करना चाहिये।'

—इस वचनके अनुसार मध्याह्न-संध्या भोजनके पहले ही की जानी चाहिये। यदि कभी एकादशीव्रतका पारण द्वादशीमें करना हो और द्वादशी सूर्योदयके बाद बहुत ही कम रह गयी हो तो प्रातः

१-गायत्रीं शिरसा सार्धमुक्त्वा व्याहृतिभिः सह।
कालातीतविशुद्ध्यर्थं चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत्॥ (मदनपारिजात)

२-मध्याह्ने तु—'अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकीष्यते' इति दक्षवचनेन पञ्चधा विभक्तदिवस्य तृतीयभागादारभ्य पञ्चमभागारम्भपर्यन्तं तत्कालो मुख्यः।
(कातीयनित्यकर्मपद्धति)

और मध्याह्न-संध्या उषःकालमें ही कर लेनी चाहिये[१]।

कर्मलोपका प्रायश्चित्त

संध्याकर्मके निश्चित कालका लोप हो जानेपर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है, फिर कर्मका लोप होनेपर तो कहना ही क्या है। कर्मका लोप तो कभी होना ही नहीं चाहिये। यदि कभी हो गया तो उसका स्मृतिके अनुसार प्रायश्चित्त कर लेना उचित है। प्रायश्चित्तके विषयमें जमदग्निका मत इस प्रकार है—यदि प्रमादवश एक दिन संध्याकर्म नहीं किया गया तो उसके लिये एक दिन-रातका उपवास करके दस हजार गायत्रीका जप करना चाहिये[२]। शौनकमुनि तो यहाँतक कहते हैं कि यदि किसीके द्वारा प्रमादवश सात राततक संध्या-कर्मका उल्लङ्घन हो जाय अथवा जो उन्माद-दोषसे दूषित हुआ रहा हो, उस द्विजका पुनः उपनयन-संस्कार करना चाहिये[३]। यदि निम्नाङ्कित कारणोंसे विवश होकर कभी संध्याकर्म न बन सका तो उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। राष्ट्रका ध्वंस हो रहा हो, राजाके चित्तमें क्षोभ हुआ हो अथवा अपना शरीर ही रोगग्रस्त हो जाय या जनन-मरणरूप अशौच प्राप्त हो जाय—इन कारणोंसे संध्याकर्ममें बाधा पड़े तो उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं है[४]।

परंतु ऐसे समयमें भी मन-ही-मन मन्त्रोंका उच्चारण करके

१-यदा भवति चाल्पाति द्वादशी पारणादिने।
उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्मध्याह्निकं तदा॥ (मत्स्यपुराण)

२-एकाहं समतिक्रम्य प्रमादादकृतं यदि।
अहोरात्रोषितो भूत्वा गायत्र्याश्चायुतं जपेत्॥ (जमदग्नि)

३-संध्यातिक्रमणं यस्य सप्तरात्रमपि च्युतम्।
उन्मत्तदोषयुक्तो वा पुनः संस्कारमर्हति॥ (शौनक)

४-राष्ट्रभङ्गे नृपक्षोभे रोगार्ते सूतकेऽपि वा।
संध्यावन्दनविच्छित्तिर्न शेषाय कथञ्चन॥ (जमदग्नि)

****

यथासम्भव कर्म करना आवश्यक है। अभिप्राय यह कि मानसिक संध्या कर लेनी चाहिये। संध्या नित्यकर्म है, अतः उसका अनुष्ठान जैसे भी हो, होना ही चाहिये। अकारण उसका त्याग किसी भी तरहसे क्षम्य नहीं है। यदि परदेशमें यात्रा करनेपर किसी समय प्रातः-सायं या मध्याह्न-संध्या नहीं बन पड़ी तो पूर्वकालके उल्लङ्घनका प्रायश्चित्त अगले समयकी संध्यामें पहले करके फिर उस समयका कर्म आरम्भ करना चाहिये[१]। दिनमें प्रमादवश लुप्त हुए दैनिक कृत्यका अनुष्ठान उसी दिनकी रातके पहले पहरतक अवश्य कर लेना चाहिये[२]।

अशौचमें संध्योपासनका विचार

जननाशौच अथवा मरणाशौचमें मन्त्रका उच्चारण किये बिना ही प्राणायाम करना चाहिये तथा मार्जन-मन्त्रोंका मन-ही-मन उच्चारण करते हुए मार्जन कर लेना चाहिये। गायत्रीका स्पष्ट उच्चारण करके सूर्यको अर्घ्य दे। मार्जन करे या न करे, परंतु उपस्थान तो नहीं ही करना चाहिये[३]। मानसिक संध्याका भी स्वरूप यही है। यह आरम्भसे अर्घ्यके पहलेतक ही की जाती है, इसमें कुश और जलका उपयोग नहीं होता[४]। गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करके जो अर्घ्य देनेकी बात

१-कालातीतेषु सर्वेषु प्राप्तवत्सूत्तरेषु च।
कालातीतानि कृत्वैव विदध्यादुत्तराणि तु॥

२-दिवोदितानि कृत्यानि प्रमादादकृतानि वै।
शर्वर्याः प्रथमे भागे तानि कुर्याद्यथाक्रमम्॥ (नागदेव)

३-सूतके मृतके वापि प्राणायाममन्त्रकम्।
तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत्॥
गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्।
मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि॥ (आह्निकसूत्रावली)

४-अर्घ्यान्ता मानसी संध्या कुशवारिविवर्जिता। (निर्णयसिन्धु)

कही गयी है, उसमें जलका उपयोग आवश्यक है अर्थात् अशौचावस्थामें भी सूर्यको जलसे अर्घ्य देना ही चाहिये[१]। जलके अभावमें धूलिसे अर्घ्य करना चाहिये। जलके अभावमें या बहुत लम्बी यात्राके समय अथवा कैदमें पड़ जानेपर या अशौच-अवस्थामें दोनों कालोंकी संध्याके समय धूलिसे भी अर्घ्य देना बताया गया है[२]। संध्याकालमें आपत्तिग्रस्त या अशौचयुक्त पुरुषको भी कम-से-कम दस-दस बार गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये[३]।

यदि बालक उत्पन्न होकर नालच्छेदके बाद गतायु हो जाय तो उसका मरणाशौच तो नहीं रहता, किन्तु जननाशौच निवृत्त नहीं होता अर्थात् पूरे १० दिनका सूतक रहता है[४]। जो बालक दाँत निकलनेके पहले देह त्याग कर दे, उसका मरणाशौच तत्काल निवृत्त हो जाता है। दाँत निकलनेसे लेकर चूडाकर्मके पहलेतक एक राततक अशौच रहता है, चूडाकर्मके बाद जनेऊके पहलेतक तीन रात और जनेऊके बाद दस राततक अशौच रहता है[५]।

संध्या-मन्त्रोंके अर्थ-ज्ञानकी आवश्यकता

संध्या-मन्त्रोंके अर्थको जानकर की हुई संध्या बलवती होती है,

१-सूतके तु सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात्।
(मिताक्षरामें पैठीनसिका म०)

२-जलाभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि।
उभयोः संध्ययोः काले रजसा वार्घ्यमुच्यते॥ (आह्निकसूत्रावली)

३-आपन्नश्चाशुचिः काले तिष्ठन्नपि जपेद्दश। (आचारमयूख)

४-यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्।
छिन्ने नाले ततः पश्चान्मृतकं तु विधीयते॥
(मिताक्षरामें जैमिनिका मत)

५-आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमात्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति ३। २३)

***

उससे पूर्ण लाभ होता है। यजुःसर्वानुक्रमसूत्रमें ऋषि आदिके निरूपणका प्रकरण आरम्भ करके कहा गया है—'**अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते**' (यजुःसर्वा० १।१) अर्थात् 'जो इन मन्त्रोंके ऋषि, छन्द, देवता आदिको भलीभाँति जानकर इनका अध्ययन करता है, उसका वह अध्ययन बलवान् होता है और जो मन्त्रोंका अर्थ समझकर अध्ययन करता है, उसका अध्ययन अधिक बलवान् होता है तथा उस मन्त्रसे जप, हवन और यजन करनेसे वह उसके फलको प्राप्त कर लेता है।'

इसलिये प्रत्येक द्विजको संध्याके मन्त्रोंका अर्थ समझ लेनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मन्त्रका अर्थ दिया हुआ है।

संध्यामें दिशाका विचार

स्मृतियोंके अनेकों वचनोंका समन्वय करनेपर यही निश्चय होता है कि तीनों कालोंकी संध्या पूर्वाभिमुख होकर करनी चाहिये[१]। ईशान कोण[२] तथा उत्तर दिशाकी[३] ओर मुँह करके भी त्रिकालसंध्या की जा सकती है, किंतु यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि अर्घ्य, उपस्थान और जप—सूर्यकी ओर ही मुँह करके किये जायँ। सारांश यह कि प्रातःसंध्याका तो समस्त कार्य पूर्वाभिमुख होकर ही करना चाहिये। परंतु मध्याह्न-संध्या और सायं-संध्यामें अर्घ्य, उपस्थान और

१-प्राङ्मुखः सततं विप्रः संध्योपासनमाचरेत्। (कूर्मपुराण, उत्तरार्द्ध १८।२७)

२-ऐशान्याभिमुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः॥ (आचारादर्श)

३-प्रक्षालितपाणिपादः शुचौ देश उपविश्य नित्यं बद्धशिखी यज्ञोपवीती प्रागुदङ्मुखो वा भूत्वा जान्वोर्मध्ये करौ कृत्वाऽशूद्रानीतोदकैर्द्विजातयो यथाक्रमं हृत्कण्ठतालुगैराचामन्ति। (कात्यायनोक्त गृह्यपरिशिष्ट शौचसूत्र)

जप—सूर्य जिस दिशामें हों, उधर ही मुँह करके करे तथा शेष आचमन आदि कर्म अपनी सुविधाके अनुसार पूर्व, ईशान या उत्तरकी ओर मुँह करके करे। किंतु दक्षिण और पश्चिमकी ओर मुँह करके आचमन नहीं करना चाहिये।

याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कहा है कि द्विज नित्य शुद्ध स्थानपर बैठकर उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख हो दोनों हाथोंको जानुओंके भीतर करके दाहिने हाथसे ब्राह्मतीर्थसे आचमन करे[१]।

कुशपवित्र-धारण

स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, संध्योपासन, पितृ-कार्य और अभिवादनमें दोनों हाथोंमें कुश धारण करना चाहिये[२]। बायें हाथमें कुश और दायें हाथमें पवित्रक धारण करना चाहिये[३]। जो द्विज दोनों हाथोंमें कुश धारण करके आचमन करता है, उसका फल सोमपान है[४]। इस प्रकार आचमन करके वह सोमपानका फल प्राप्त करता है।

उपर्युक्त वचनोंसे कुश धारणका महत्त्व स्पष्ट होता है। अब यह बताया जाता है कि किस हाथमें कितने कुश धारण करने चाहिये। सुमन्तका वचन है—दायें हाथमें दो कुशोंकी बनी हुई पवित्री धारण करे, उन दोनों कुशोंके मूल और अग्रभाग तो रहें, गर्भ निकाल देना चाहिये। बायें हाथमें तीन कुश धारण करे—सभी कार्योंमें यही

१-अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १ । १७)

२-स्नाने दाने जपे होमे स्वाध्याये पितृकर्मणि।
करौ सदर्भौ कुर्वीत तथा संध्याभिवादने॥ (आह्निकसूत्रावली)

३-सव्यः सोपग्रहः कार्यो दक्षिणः सपवित्रकः। (कात्यायनस्मृति ११ । ३)

४-उभयत्र स्थितैर्दर्भैः समाचामति यो द्विजः।
सोमपानं फलं तस्य भुक्त्वा यज्ञफलं भवेत्॥ (आह्निकसूत्रावली)

****

नियम है[१]। पवित्रकयुक्त हाथसे ही आचमन करना चाहिये। आचमनसे पवित्रक उच्छिष्ट (जूठा) नहीं होता, परंतु भोजनकालमें धारण किये हुए पवित्रकको तो भोजनके पश्चात् अवश्य त्याग देना चाहिये[२]। कुशका पवित्रक न मिलनेपर काशका पवित्रक बना लेना चाहिये; क्योंकि काश भी कुशके ही समान है। यदि काश भी न मिल सके तो अन्य दर्भोंसे काम लेना चाहिये[३]। कुश, काश, शर (मूज), दूब, जौ, गेहूँके पौदे, बल्वज (बगई), सोना, चाँदी तथा ताँबा—ये दस प्रकारके दर्भ होते हैं[४]। सोने, चाँदी या ताँबेकी अँगूठी बनवाकर पहन लेनेसे वह सदा ही पवित्रकका काम देती है और उसके उच्छिष्ट होनेका भी भय नहीं रहता।

शिखाबन्धन तथा यज्ञोपवीतधारण

संध्या आरम्भ करनेके पूर्व गायत्री-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक शिखा बाँध लेनी चाहिये। सदा ही यज्ञोपवीत धारण किये रहना आवश्यक है। जिसकी शिखा बँधी न हो तथा जो यज्ञोपवीतसे रहित हो गया हो वह जो कुछ भी पुण्य कर्म करता है, नहींके बराबर हो जाता है[५]। यदि मन्त्रके बिना ही शिखा बाँधी गयी तो उस दशामें भी किया हुआ

१-समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे।
सव्ये चैव तथा त्रीन्वै बिभृयात् सर्वकर्मसु॥ (सुमन्त)

२-सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम्।
नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत्॥ (कात्यायन)

३-कुशाभावे तु काशाः स्युः काशाः कुशसमाः स्मृताः।
काशाभावे गृहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिताः॥

४-कुशाः काशाः शरा दूर्वा यवगोधूमबल्वजाः।
सुवर्णं राजतं ताम्रं दश दर्भाः प्रकीर्तिताः॥ (कातीयभाष्य)

५-सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन तु।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

****

जप-होम आदि सफल नहीं होता, इसलिये ॐकार और गायत्री-मन्त्रका स्मरण करके ही शिखा बाँधनी चाहिये[१]। श्रौत और स्मार्त कर्मोंमें दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहिये । यदि उत्तरीय वस्त्र (चादर या गमछा) न हो तो उसके लिये एक और (कुल तीन) यज्ञोपवीत धारण करना उचित है[२]।

भगवत्स्मरण और आसनशुद्धि

शिखा-बन्धनके पश्चात् भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये। इससे बाह्य एवं अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। प्रत्येक कर्मके आरम्भमें भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण बड़ा ही मङ्गलदायक है[३]। संध्यामें आसनशुद्धि परम आवश्यक क्रिया है। इसके अन्तर्गत कई बातें हैं। कुशादि आसनोंकी शुद्धि, सिद्धासन आदि आसनोंकी शुद्धि और अङ्गोंका यथास्थान स्थापन। कुशादि आसनोंकी शुद्धिका प्रकार यह है। समभूमिपर आसन बिछावे। कुश और कम्बल-वस्त्र आदिमेंसे कोई भी आसन होना चाहिये अथवा ये दोनों ही हों तो और अच्छा है।**'पृथ्वि त्वया॰'** इस मन्त्रसे आसनको जलसे अभिषिक्त करके दायें हाथसे उसका स्पर्श करना चाहिये।

इस प्रकार उक्त मन्त्रके द्वारा जगद्धात्री माता पृथ्वीकी प्रार्थनापूर्वक आसनका स्पर्श करनेसे आसन शुद्ध होता है। तत्पश्चात् उस शुद्ध हुए आसनपर बैठना चाहिये। उसपर बैठे हुए साधकको

१-अमन्त्रो दीयते ग्रन्थिर्जपो होमो वृथा भवेत्।
स्मृत्वोङ्कारं च गायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां ततः॥ (नागदेव)

२-यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि।
तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदीष्यते॥ (विश्वामित्रकल्प)

३-सर्वमङ्गलमङ्गल्यं वरेण्यं वरदं विभुम्।
नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत्॥

****

भगवान्‌के साथ अपने सम्बन्धका अनुभव होता है। मन्त्र-जपके समय अथवा वृत्तियोंको एकाग्र करते समय शरीरके अन्दर एक प्रकारकी विद्युत्-शक्ति आविर्भूत होती है, जो शरीर और मनको स्वस्थ बनाती है। यदि शरीर और पृथ्वीके बीच कोई आसन न रखा जाय तो वह विद्युत्-शक्ति पृथ्वीके आकर्षणसे खिंच जायगी और इससे शरीर तथा मन—दोनोंके ही स्वास्थ्यनाशकी आशङ्का रहेगी। इसलिये शास्त्रोंमें आसनपर बड़ा जोर दिया गया है।

आसनपर बैठनेमें दो बातोंका ध्यान रखना चाहिये। एक तो सिद्धासन, स्वस्तिकासन और पद्मासन आदिमेंसे कोई आसन होना चाहिये और दूसरी यह कि हाथ, पैर, सिर आदि यथास्थान ही रहना चाहिये। जप आदि करते समय पैरके तलुओंका, गुह्य स्थानोंका स्पर्श निषिद्ध है। पीठकी रीढ़ सीधी होनी चाहिये। शरीर, गला और सिर भी सम स्थितिमें ही होने चाहिये। मन्त्रोंके उच्चारणके समय नस-नाड़ियोंका और शरीरके सूक्ष्म अवयवोंका परस्पर आघात-प्रत्याघात होता है, जिससे शरीरके अवयवोंमें भी परिवर्तन होता है और शक्तिका विकास तथा प्रसार भी होता है। कोई नस-नाड़ी टेढ़ी रहे अथवा हाथ आदि रख देनेके कारण उसके प्रवाहमें बाधा पड़े तो उन क्रियाओंसे उतना लाभ नहीं होता। इसलिये संध्या अथवा ध्यान करते समय शरीरको सीधा तथा स्थिर रखना बहुत ही आवश्यक है।

आचमन

पूर्वोक्तरूपसे आसनपर बैठकर शुद्ध जलसे आचमन करना चाहिये। आचमन संध्याका एक मुख्य अङ्ग है और यह भिन्न-भिन्न मन्त्रोंसे कई बार किया जाता है। आचमनसे मानसिक उत्तेजना शान्त होती है। इन्द्रियोंको धोनेसे, कुल्ला करनेसे एवं पानी पीनेसे काम, क्रोध आदि विकारोंको बहुत कुछ शान्त होते देखा गया है। आचमनके मन्त्रोंपर विचार करनेसे मालूम होता है कि वे विभिन्न

***

प्रकारके दोषोंको दूर करनेकी प्रार्थनाएँ हैं। मन्त्रार्थ भावनापूर्वक आचमन करनेसे दोषोंके दूर होने और ध्यान लगनेमें बहुत बड़ी सहायता मिलती है। कात्यायनसूत्रमें आचमनकी विधि इस प्रकार लिखी है—हाथ-पैर धोकर पवित्र स्थानमें बैठ, शिखा बाँधकर यज्ञोपवीत धारण किये हुए ही पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुख करके आचमन करना चाहिये। उस समय हाथ घुटनोंके बाहर न रहे। आचमनका जल सर्वथा शुद्ध हो। उसमें फेन या बुलबुले आदि न हों। ब्राह्मण उतने ही जलसे एक आचमन करे जितना हृदयतक पहुँच सके। क्षत्रियको कण्ठतक पहुँचने लायक जलसे एक आचमन करना चाहिये । वैश्य तालुमात्रतक पहुँचनेयोग्य जलसे एक आचमन करे। ओष्ठ खुले न रखे। आचमनका जल लेते समय हाथकी अङ्गुलियाँ सटी रहें, अङ्गुष्ठ-कनिष्ठिका अलग रहें। खड़ा होकर या हँसते हुए आचमन न करे। ब्राह्मतीर्थसे तीन बार आचमन करके अँगूठेके मूलसे दो बार ओठोंको पोंछे, फिर हाथ धो ले। अँगूठेका मूल ब्राह्मतीर्थ है। पहले आचमनसे ऋग्वेद, दूसरेसे यजुर्वेद और तीसरेसे सामवेदकी तृप्ति होती है, आचमनसे जो जल चूकर गिरता है, उससे नाग-यक्ष आदि तृप्त होते हैं। इसके बाद मध्यमा-अनामिका अङ्गुलियोंसे मुख-नासिकाका, तर्जनी-अँगूठेसे नेत्रोंका, अनामिका-अँगूठेसे कानोंका, कनिष्ठिका-अँगूठेसे नाभिका, हाथसे हृदयका तथा सब अङ्गुलियोंसे मस्तक एवं बाहुओंका स्पर्श करना चाहिये।

यह आचमन संध्या-संकल्पसे पहलेका है। इसमें तीन बार आचमन करते समय क्रमशः '**ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा**'—इन तीन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। फिर अन्तमें '**ॐ गोविन्दाय नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करके हाथ धो लेना चाहिये। इसके बाद संध्यामें मन्त्र-आचमन भी होता है, वहाँ एक बार मन्त्र पढ़कर एक ही बार

आचमन करना चाहिये, क्योंकि यागादि कर्मोंमें जहाँ-जहाँ श्रौत आचमन है, सर्वत्र एक ही बार आचमन किया जाता है। जो लोग तीन बार आचमन करते हैं, उन्हें भी मन्त्रपाठ एक ही बार करना चाहिये[१]। यदि कर्ममें प्रवृत्त होनेपर विप्र (द्विजमात्र) को छींक आदि आ जाय तो उसके लिये जलाभावमें आचमनकी जगह दायें कानके स्पर्शका भी विधान है, क्योंकि विप्रके दक्षिण कानमें देवताओंका निवास माना जाता है[२]।

यहाँ विनियोगके सम्बन्धमें एक बात ध्यान देनेकी है। आजकल विनियोग पढ़कर जल छोड़नेकी परिपाटी चल रही है, किंतु जल छोड़नेका शास्त्रोंमें कहीं विधान नहीं मिलता, उनमें तो ऋषि आदिके स्मरणका ही महत्त्व बताया गया है। इसलिये विनियोगका पाठमात्र ही करना चाहिये, जल छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है।

प्राणायाम

प्राणायाम संध्या-कर्मका एक प्रधान अङ्ग है। इसके अभ्याससे प्राणशक्तिका विकास होता है। प्राणशक्तिके अपव्ययसे प्राणी रोग और अकालमृत्युके शिकार होते हैं। प्राणायामके द्वारा प्राणवायुका निरोध

१-एकद्रव्ये कर्मावृत्तौ सकृन्मन्त्रवचनम्, कृतत्वात्। (का० सू०)
अत्र पानव्यक्तिभेदेऽपि आचमनकर्मण ऐक्यान्न प्रतिजलपानमन्त्रावृत्तिः॥

२-श्रुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते।
पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्॥
अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा।
सर्वे देवाश्च विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे॥

अर्थात् छींकने और थूकनेपर, दाँतके उच्छिष्टसे सम्पर्क हो जानेपर अथवा भूलसे झूठ बोले जानेपर या पतित पुरुषोंके साथ बातचीत होनेपर अपने दायें कानका स्पर्श करें। क्योंकि विप्रके दायें कानमें अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य और वायु—ये सभी देवता वास करते हैं।

होनेसे प्राणशक्तिका आयाम—विस्तार होता है। प्राणक्रियाके अनियन्त्रित हो जानेके कारण ही जीवनके बहुत-से अङ्ग बेकार—निकम्मे हो गये हैं। प्राणायामके द्वारा क्रियाशक्ति नियन्त्रित की जाती है। वे नस-नाड़ियाँ जो वायु-संचार न होनेके कारण अनेक प्रकारके रोगोंका उद्गम बन रही हैं। पुनः अपना काम ठीक-ठीक करने लग जाती हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है कि मन, प्राण और वीर्य—ये तीनों एक ही वस्तु हैं। तीनोंमेंसे एकको वशमें कर लिया जाय तो शेष दो अपने-आप वशमें हो जाते हैं। जिसने प्राण वशमें कर लिये, उसका मन वशमें हो गया और उसका वीर्य भी स्थिर हो गया। मनकी स्थिरतासे आध्यात्मिक लाभ और वीर्यकी स्थिरतासे लौकिक-पारलौकिक लाभ सुनिश्चित हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिसे प्राणायामका बहुत बड़ा महत्त्व है। फेफड़ेमें सात करोड़ कई लाख छोटे-छोटे छिद्र माने जाते हैं, उनके द्वारा समस्त शरीरमें रक्तका प्रसार होता है। प्राणायाम करनेसे जो वायु रुककर भीतर जाती है, वह बड़े वेगसे फेफड़ेमें प्रवेश करती है। इससे उन छिद्रोंमें जो मल आदि ठहरे होते हैं, वे दूर हो जाते हैं और रुधिर भी वहाँसे शुद्ध होकर संचरित होता है। अतः अपनी वास्तविक उन्नतिकी इच्छा रखनेवालोंको पूर्ण तत्परतासे प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामकी विधि इस प्रकार है—अँगूठेसे नासिकाके दक्षिण छिद्रको दबाकर बायेंसे श्वासको खींचे और ध्यानपूर्वक प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ कर जाय। फिर अनामिका और कनिष्ठिका अङ्गुलियोंसे नासिकाके बायें छिद्रको भी मूँद ले और पुनः ध्यानपूर्वक तीन बार प्राणायाम-मन्त्रका पाठ कर जाय। इसके पश्चात् नासिकाके दाहिने छिद्रसे अँगूठा हटा ले और उससे धीरे-धीरे तबतक श्वास छोड़ता रहे, जबतक ध्यानपूर्वक प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ न कर जाय। यदि तीन बार मन्त्र न जपा जा सके तो एक ही

बार जपना चाहिये। श्वास खींचनेकी क्रियाको पूरक, रोकनेको कुम्भक और निकालनेको रेचक कहते हैं। पूरक करते समय नील कमलदलके समान श्यामसुन्दर चतुर्भुज भगवान् विष्णुका नाभिदेशमें ध्यान करे। कुम्भक करते समय भगवान्की नाभिसे प्रकट हुए कमलके आसनपर विराजमान अरुण-गौर-मिश्रित वर्णवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीका हृदयदेशमें ध्यान करे तथा रेचक करते समय शुद्ध स्फटिकके समान श्वेतवर्ण त्रिनेत्र महादेवजीका ललाटमें ध्यान करे। कोई-कोई पूरकमें ब्रह्मा, कुम्भकमें विष्णु और रेचकमें शिवका ध्यान करना बतलाते हैं। पर आह्निकप्रकाशमें याज्ञवल्क्य, पारिजात और रत्नाकर आदिके वचनोंका उल्लेख करके पूर्वोक्त पक्षको ही सिद्धान्त माना है[१]। कुछ लोग पहले वाम नासिकाको ही दबाकर दायीं नासिकासे पूरक करते हैं; परंतु आह्निकप्रकाशमें यजुर्वेदीके लिये पूर्वोक्त प्रकारका ही समर्थन किया गया है।

मन्त्राचमन

प्रातः-संध्यामें '**सूर्यश्च**……' मध्याह्न-संध्यामें '**आपः पुनन्तु**……' और सायं-संध्यामें '**अग्निश्च**……' इत्यादि मन्त्रसे

१-नीलोत्पलदलश्यामं नाभिदेशे प्रतिष्ठितम्।
चतुर्भुजं महात्मानं पूरकेणैव चिन्तयेत्॥
कुम्भकेन हृदिस्थाने ध्यायेच्च कमलासनम्।
ब्रह्माणं रक्तगौराङ्गं चतुर्वक्त्रं पितामहम्॥
रेचकेनेश्वरं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम्॥ (मदनपारिजात)
अङ्गुष्ठेन पुरो धार्यं नासाया दक्षिणं पुनः।
कनिष्ठानामिकाभ्यां तु वामं प्राणस्य संग्रहे॥
पीडयेद्दक्षिणां नाडीमङ्गुष्ठेन तथोत्तराम्।
कनिष्ठानामिकाभ्यां च मध्यमां तर्जनीं त्यजेत्॥ (याज्ञवल्क्य)

****

आचमन किया जाता है। इसके अतिरिक्त **'ऋतं च॰'** और **'अन्तश्चरसि॰'** मन्त्रका भी आचमनमें उपयोग होता है। यह आचमन एक बार मन्त्र पढ़कर एक बार ही किया जाना चाहिये। आचमनके पश्चात् हाथ धो ले।

मार्जन

संध्याकी क्रियाओंमें मार्जनका भी प्रमुख स्थान है। मार्जनका अर्थ है साफ करना—झाड़ू देना। स्नान करनेसे शरीर तो स्वच्छ रहता ही है। मार्जनके द्वारा उसमें पवित्रता भरी जाती है। जिस समय शरीर गरम रहता या परिश्रमके कारण थका रहता है, उस समय उसमें रक्त और वायु दोनों ही उत्तेजित रहते हैं। रक्तके वेगवान् प्रवाहके कारण मन भी चञ्चल रहता है और वैसी स्थितिमें किसी प्रकारकी उपासना ठीक-ठीक नहीं बन पाती। इसीसे उपासनाके पूर्व स्नानका विधान है। स्नानकी भी विधि है, भावना है और उसके कई भेद हैं। परंतु मार्जनमें विधिपर विशेष जोर देते हुए भी मन्त्रोक्त देवता और भावनाकी ही प्रधानता रखी गयी है। मार्जनके द्वारा रक्तका प्रवाह कम होता है, शीतलताके कारण उद्दीप्त भावनाएँ शिथिल पड़ती हैं। मनमें चिन्तनकी शक्ति आती है और जलके अधिष्ठाता देव प्रसन्न होकर साधककी सहायता करते हैं। मनुष्यके शरीरमें दो तिहाईसे अधिक जलीय अंश है। शरीरमें शक्ति, जीवन, स्फूर्ति आदि इसीसे आते हैं। परमात्माके चिन्तनमें अपनी पूरी शक्ति लगानेके लिये जलके अधिष्ठाता देवसे प्रार्थना करना आवश्यक है। चित्तमें जबतक ग्लानि रहती है, तबतक कोई भी उपासना प्रसन्नतासे नहीं होती। प्रसादपूर्वक हुए बिना किसी भी उपासनाकी सफलता संदिग्ध है। इसलिये भी मार्जनकी आवश्यकता है कि चित्तकी ग्लानि दूर हो जाय और जलाधिष्ठातृ-देवताकी सहायतासे यह भावना दृढ़ हो जाय कि मैं परम पवित्र होकर स्थिरभावसे परमात्माकी उपासना करने बैठा हूँ, अब पाप-ताप मेरा

स्पर्श नहीं कर सकते। मैं अविचल भावसे भगवान्‌का चिन्तन करूँगा। इसी भावनासे मार्जन-मन्त्रद्वारा जलाधिष्ठातृदेवताकी प्रार्थना करते हुए अपने अङ्गोंपर जल छिड़ककर स्थिरताकी भावना दृढ़ की जाती है।

'आपो हि ष्ठा॰' इत्यादि मन्त्रसे मार्जन किया जाता है। इनमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचा तीन-तीन चरणोंकी हैं। कुल नौ चरण हैं। प्रत्येकके आदिमें ॐकार जोड़कर सात चरणोंको पढ़कर सिरपर जल छिड़के, आठवेंसे भूमिपर और फिर नवेंसे मस्तकपर जल सींचना चाहिये[१]। यदि नदी आदिमें मार्जन करना हो तो कुशा या हाथसे ही जल लेकर छिड़कना चाहिये। घरपर करना हो तो किसी पात्रमें या बायें हाथमें जल लेकर दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे सींचना चाहिये। यदि वर्षा या नलसे जलकी धारा गिरती हो तो उस जलका संध्यामें उपयोग नहीं करना चाहिये[२]।

अघमर्षण

संध्यामें अघमर्षणकी बड़ी महिमा है। प्राणी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार जो अपनेमें अनन्त अघराशि संचित कर लेता है, उसीके कारण उसे परमात्मासे पृथक् रहकर नाना प्रकारकी दारुण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। अघमर्षणकी साधनासे मनुष्य निष्पाप होकर परमात्मप्राप्तिका अधिकारी बन जाता है। इसके साधनका सहज एवं संक्षिप्त प्रकार यों है—दाहिने हाथमें जल लेकर उसे नासिकाके पास लगावे और श्वास रोककर या बिना रोके ही तीन या एक बार अघमर्षण सूक्तका जप करना चाहिये[३]। उस समय मनमें ऐसी भावना करे कि

१-विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेन्मूर्ध्नि अधो यस्य क्षयाय च। (व्याससमृति)

२-धाराच्युतेन तोयेन संध्योपास्तिर्विगर्हिता। (प्रयोगपारिजात)

३-करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च।
जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम्॥ (कात्यायन)

यह जल वाम नासिकाके मार्गसे भीतर प्रवेश कर दायीं नासिकाके छिद्रसे पापको निकाल रहा है, फिर उस जलकी ओर बिना देखे ही उसे बायीं ओर पृथ्वीपर फेंक दे[१]। यह अघमर्षणसूक्त अश्वमेध यज्ञके समान सब पापोंको दूर करनेवाला है[२]। परमात्माके साक्षात्कारमें मल, विक्षेप और आवरण तीन दोष बाधक माने जाते हैं। संध्याके द्वारा मल, विक्षेप और आवरण सभी नष्ट हो जाते हैं। अघमर्षण-मन्त्र मलका नाश करता है, विक्षेपको दूर भगाता है, मनमें प्रसन्नता भर देता है और मेरे पाप नष्ट हो गये—इस भावको दृढ़ कर देता है। दृढ़तासे विक्षेप नष्ट होते हैं और मन्त्रके अर्थपर विचार करते ही आवरण भङ्ग हो जाता है। अघमर्षण-मन्त्रके अर्थपर ध्यान देनेसे संसारके सब पदार्थोंका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़कर साधक उस प्रभुका वैभव और उसकी लीला देखनेमें मस्त हो जाता है। इसलिये सब प्रकारके साधकोंको अघमर्षणका सविधि अनुष्ठान करना चाहिये।

अर्घ्यदान

इस पृथ्वीमण्डल और यहाँ रहनेवाले जीवोंका सूर्यके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्यके ही प्रकाशसे, चाहे वह चन्द्रमाके रूपमें हो या दीपकके, हम इस संसारको देख पाते हैं। सूर्यकी ही उष्णतासे हमारा यह जीवन जीवन बना हुआ है तथा भोजनका परिपाक करके सूर्य ही हमें रस भी देते हैं। यह पृथ्वी सूर्यसे ही प्रकट हुई है और सूर्य स्वयं भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। अतः प्रत्येक द्विजको नियत समयपर अर्घ्यदान और नमस्कार आदिके द्वारा उनकी उपासना करनी

१-दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत्।
तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत्॥ (आचारमयूख)

२-यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः।
तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम्॥ (लघुव्याससमृति)

****

स्पर्श नहीं कर सकते। मैं अविचल भावसे भगवान्‌का चिन्तन करूँगा। इसी भावनासे मार्जन-मन्त्रद्वारा जलाधिष्ठातृदेवताकी प्रार्थना करते हुए अपने अङ्गोंपर जल छिड़ककर स्थिरताकी भावना दृढ़ की जाती है।

'**आपो हि ष्ठा०**' इत्यादि मन्त्रसे मार्जन किया जाता है। इनमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचा तीन-तीन चरणोंकी हैं। कुल नौ चरण हैं। प्रत्येकके आदिमें ॐकार जोड़कर सात चरणोंको पढ़कर सिरपर जल छिड़के, आठवेंसे भूमिपर और फिर नवेंसे मस्तकपर जल सींचना चाहिये[१]। यदि नदी आदिमें मार्जन करना हो तो कुशा या हाथसे ही जल लेकर छिड़कना चाहिये। घरपर करना हो तो किसी पात्रमें या बायें हाथमें जल लेकर दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे सींचना चाहिये। यदि वर्षा या नलसे जलकी धारा गिरती हो तो उस जलका संध्यामें उपयोग नहीं करना चाहिये[२]।

अघमर्षण

संध्यामें अघमर्षणकी बड़ी महिमा है। प्राणी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार जो अपनेमें अनन्त अघराशि संचित कर लेता है, उसीके कारण उसे परमात्मासे पृथक् रहकर नाना प्रकारकी दारुण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। अघमर्षणकी साधनासे मनुष्य निष्पाप होकर परमात्मप्राप्तिका अधिकारी बन जाता है। इसके साधनका सहज एवं संक्षिप्त प्रकार यों है—दाहिने हाथमें जल लेकर उसे नासिकाके पास लगावे और श्वास रोककर या बिना रोके ही तीन या एक बार अघमर्षण सूक्तका जप करना चाहिये[३]। उस समय मनमें ऐसी भावना करे कि

१-विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेन्मूर्ध्नि अधो यस्य क्षयाय च। (व्यासस्मृति)

२-धाराच्युतेन तोयेन संध्योपास्तिर्विगर्हिता। (प्रयोगपारिजात)

३-करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च।
जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम्॥ (कात्यायन)

यह जल वाम नासिकाके मार्गसे भीतर प्रवेश कर दायीं नासिकाके छिद्रसे पापको निकाल रहा है, फिर उस जलकी ओर बिना देखे ही उसे बायीं ओर पृथ्वीपर फेंक दे[१]। यह अघमर्षणसूक्त अश्वमेध यज्ञके समान सब पापोंको दूर करनेवाला है[२]। परमात्माके साक्षात्कारमें मल, विक्षेप और आवरण तीन दोष बाधक माने जाते हैं। संध्याके द्वारा मल, विक्षेप और आवरण सभी नष्ट हो जाते हैं। अघमर्षण-मन्त्र मलका नाश करता है, विक्षेपको दूर भगाता है, मनमें प्रसन्नता भर देता है और मेरे पाप नष्ट हो गये—इस भावको दृढ़ कर देता है। दृढ़तासे विक्षेप नष्ट होते हैं और मन्त्रके अर्थपर विचार करते ही आवरण भङ्ग हो जाता है। अघमर्षण-मन्त्रके अर्थपर ध्यान देनेसे संसारके सब पदार्थोंका सम्बन्ध भगवान्के साथ जोड़कर साधक उस प्रभुका वैभव और उसकी लीला देखनेमें मस्त हो जाता है। इसलिये सब प्रकारके साधकोंको अघमर्षणका सविधि अनुष्ठान करना चाहिये।

अर्घ्यदान

इस पृथ्वीमण्डल और यहाँ रहनेवाले जीवोंका सूर्यके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्यके ही प्रकाशसे, चाहे वह चन्द्रमाके रूपमें हो या दीपकके, हम इस संसारको देख पाते हैं। सूर्यकी ही उष्णतासे हमारा यह जीवन जीवन बना हुआ है तथा भोजनका परिपाक करके सूर्य ही हमें रस भी देते हैं। यह पृथ्वी सूर्यसे ही प्रकट हुई है और सूर्य स्वयं भगवान्के ही स्वरूप हैं। अतः प्रत्येक द्विजको नियत समयपर अर्घ्यदान और नमस्कार आदिके द्वारा उनकी उपासना करनी

१-दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत्।
तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत्॥ (आचारमयूख)

२-यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापांपनोदनः।
तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम्॥ (लघुव्याससमृति)

चाहिये। इससे भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न होते हैं, उनकी प्रसन्नतासे हमारी आँखोंमें ज्योति आती है, बुद्धिमें प्रकाश होता है और आँखें बुरे विषयोंकी ओर जानेसे रुक जाती हैं; क्योंकि सूर्यकी शक्तिके बिना आँखें कुछ कर ही नहीं सकतीं। इसलिये अपने अन्तःकरण और शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये सूर्यदेवको अर्घ्य देना बहुत आवश्यक है। अर्घ्यदानकी विधि थोड़ेमें इस प्रकार है—दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें जल लेकर उसे गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर सूर्यकी ओर मुख करके खड़ा हो तीन बार अर्घ्य दे[१]। खड़ा होनेमें विशेष विधि यों है—एक पैरसे खड़ा होकर दूसरे पैरकी एँड़ी उठाये रखे या एक पैर बिलकुल उठाये रखे अथवा एक पैर बिलकुल उठाकर दूसरे पैरके पंजेके बलपर खड़ा हो यानी दाहिना पैर भी जमीनसे ऊपर उठाना चाहिये और बायें पैरके पंजेपर या पूरे ही बायें पैरपर खड़ा रहना चाहिये। अथवा दाहिने पैरकी केवल एँड़ी भी उठा सकते हैं। खड़ा होनेके प्रकारोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है; क्योंकि उसमें परिश्रम अधिक होनेके कारण उसके कल्याणमय फलमें भी अधिकता होती है ऐसा मनीषीजन कहते हैं। सूर्योपस्थानमें भी ऐसा ही खड़ा होना चाहिये[२]। खड़ा होनेका नियम केवल प्रातःकाल और मध्याह्नकालमें है। तीन बार जल देनेका नियम प्रातःकाल और सायंकालमें है। मध्याह्नकालमें

१-कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्।
आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिः क्षिपेत् संध्ययोर्द्वयोः॥

(याज्ञवल्क्य)

२-तदसंसक्तपार्ष्णिर्वा एकपादर्धपादपि।
कुर्यात् कृताञ्जलिर्वापि ह्यूर्ध्वं बाहुरथापि वा॥
यत्र स्यात् कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः।
भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते॥ (गोभिल० २।१२,१३,१४)

****

केवल एक बार जलका अर्घ्य देना चाहिये[१]। प्रातःकाल अर्घ्य देते समय मस्तक झुकाकर खड़ा होना चाहिये और मध्याह्नकालमें सीधे खड़े होकर अर्घ्य देना चाहिये, परंतु सायंकालमें बैठकर ही पृथ्वीपर अर्घ्यजल गिराना चाहिये[२]। प्रातःकाल और मध्याह्नकालके अर्घ्यके समय जलमें ही जल गिरावे। यदि जल न हो तो स्थलको भलीभाँति धोकर उसपर विधिपूर्वक जल गिराना चाहिये। सायंकालमें जलमें अर्घ्यजल गिरानेसे रौरव नरककी प्राप्ति बतलायी गयी है[३]। अर्घ्य देते समय हाथ खुले रखे, तर्जनी-अँगूठे न सटने दे।

सूर्योपस्थान

अर्घ्यदानके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करनेके बाद उनकी स्तुति-प्रार्थना की जाती है—यही उपस्थान है। सूर्योपस्थानका अर्थ है भगवान् सूर्यके पास उपस्थित होना—उनके दरबारमें हाजिरी देना। सूर्योपस्थानके द्वारा हमें भगवान् सूर्यका संनिधान प्राप्त होता है। सूर्योपस्थानकी विधि इस प्रकार है—खड़ा होकर **'उद्वयम्०'** इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रातःसायं तो कृताञ्जलि होकर और मध्याह्नमें दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर सूर्यदेवका स्तवन करे, फिर प्रदक्षिणापूर्वक इन्हें प्रणाम करे। मध्याह्नकालके सूर्योपस्थानमें थोड़ी-सी विशेषता है—उसमें **'उद्वयम्०'** इत्यादि चार मन्त्रोंके अतिरिक्त **'विभ्राद्०'**

१-मध्याह्ने तु सकृच्चैव क्षेपणीयं द्विजातिभिः। (तैत्तिरीयसंध्याभाष्य, पूना)

२-प्रातः प्रह्वः क्षिपेदप्सु मध्याह्ने ऋजुसंस्थितः।
अर्घ्यप्रक्षेपणं कुर्यात् सायं तूपविशन् भुवि॥ (,, ,,)

३-जले त्वर्घ्यं प्रदातव्यं जलाभावे तु तत्स्थले।
सम्प्रोक्ष्य वारिणा सम्यक् पश्चादर्घ्यं यथाविधि॥ (,, ,,)
उपविश्य तु सायाह्ने जले त्वर्घ्यं न निक्षिपेत्।
निक्षिपेद् यदि मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत्॥ (,, ,,)

****

इत्यादि अनुवाक, पुरुषसूक्त (सोलह मन्त्र), शिवसंकल्प (छः मन्त्र) तथा मण्डलब्राह्मणका भी यथासम्भव पाठ करना चाहिये[१]।

गायत्री-जप

उपस्थानके पश्चात् बैठकर **'तेजोऽसि०'** इत्यादि मन्त्रसे गायत्रीदेवीका आवाहन करके **'गायत्र्यसि०'** इत्यादि मन्त्रसे उन्हें प्रणाम करना चाहिये; इसके बाद आद्यन्त प्रणवसहित तीन महाव्याहृतियुक्त गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। गायत्री-मन्त्रमें परमात्माका स्तवन है, अतः इसके जपसे बारम्बार परमेश्वरकी स्तुति सम्पन्न होती है, जिससे मनुष्य जन्म-मरणके चक्करसे छुटकारा पाकर शाश्वत शान्तिको पा जाता है। शास्त्रोंमें गायत्री-मन्त्रके जपका बहुत बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है। योगी याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—प्रतिदिन सात बार जप करनेसे गायत्रीदेवी शरीरको पवित्र करती हैं, दस बारके जपसे स्वर्गलोककी प्राप्ति कराती हैं, बीस बार जप करनेसे शिवलोकमें पहुँचाती हैं और एक सौ आठ बारके जपसे जन्म-समुद्रसे पार कर देती हैं। जो इससे पार हो जाता है, वह पुनः इस जन्म-मृत्युके दुःखको नहीं देखता। गायत्री दस बारके जपसे वर्तमान जन्मका, सौ बारके जपसे पूर्वजन्मका तथा एक हजार जप करनेसे तीन जन्मोंका पाप नष्ट कर देती हैं। यदि अङ्गोंसहित चारों वेद और सभी वाङ्मय शास्त्र पढ़ लिये गये तो भी जो गायत्रीको तत्त्वतः नहीं जानता, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ है। गायत्रीमात्रसे संतुष्ट होकर अपनी मनोवृत्तिको नियन्त्रित रखनेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है। किंतु जिसका अपने मनपर काबू नहीं है, वह सब कुछ चाहनेवाला और लोभवश अपना सब कुछ

१-उद्वयमुदुत्यं चित्रं तच्चक्षुरिति गायत्र्या च यथाशक्ति विभ्राडित्यनुवाकपुरुषसूक्त-शिवसंकल्पमण्डलब्राह्मणैरित्युपस्थाय प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्योपविशेत्।

(कात्यायनोक्तत्रिकण्डिकासूत्र २)

****

बेचनेवाला विप्र तीनों वेदोंका ज्ञाता होकर भी उत्तम नहीं है।[1] बृहद्यम-स्मृतिका वचन है कि द्विज केवल वेदके स्वाध्यायसे उस प्रकार अपने पापोंको नहीं दग्ध कर सकता जिस प्रकार कि गायत्री-जप करके वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है[2]।

गायत्री-जपमें ही जीवनकी सच्ची सार्थकता है, इसलिये मनोयोगपूर्वक गायत्री-जप करना चाहिये। जप तीन प्रकारका होता है— वाचिक, उपांशु और मानस। इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, पद, अक्षर एवं शब्दके स्पष्ट होनेका ध्यान रखते हुए वाणीसे मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण वाचिक-जप है[3]। जिससे दूसरोंको शब्द सुनायी न दे, इस प्रकार जरा-जरा-सा ओठ हिलाकर सूक्ष्म

१-सप्तभिः पावयेद्देहं दशभिः प्रापयेद् दिवम्।
विंशत्यावर्तिता देवी नयते चेश्वरालयम्॥
अष्टोत्तरशतं जप्ता तारयेज्जन्मसागरात्।
तीर्णो न पश्यति प्रायो जन्म मृत्युं हि दारुणम्॥
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम्।
त्रिजन्मजं सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्बिषम्॥
वेदाः साङ्गास्तु चत्वारोऽधीताः सर्वेऽथ वाङ्मयाः।
गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥
गायत्रीमात्रसंतुष्टः श्रेयान् विप्रः सुयन्त्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदी च सर्वाशी सर्वविक्रयी॥

(योगियाज्ञवल्क्य-स्मृति)

२-न तथा वेदजपतः पापं निर्दहति द्विजः।
यथा सावित्रीं जपतः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(बृहद्यम-स्मृति)

३-त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः॥
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरः।

(नरसिंहपुराण)

उच्चारणपूर्वक मन्त्रका जप उपांशु कहलाता है[१]। मन-बुद्धिके द्वारा मन्त्रके वर्ण, शंब्द और अर्थका चिन्तन करना मानस-जप है[२]। प्रत्येक कालकी संध्यामें गायत्री-मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य करना चाहिये। जप जितना ही अधिक हो, उतना ही विशेष लाभ होता है। ब्रह्मचारी और गृहस्थ कम-से-कम १०८ बार जप करे तथा वानप्रस्थ एवं संन्यासीको प्रति समय दो हजारसे भी अधिक गायत्री-जप करना चाहिये[३]।

जपकी सिद्धिके लिये निम्नाङ्कित नियमोंका पालन करना आवश्यक है—मनमें संतोष, पवित्रता, मौनभाव और मन्त्रके अर्थका विचार करना तथा उद्वेग एवं खेदका न होना[४]। जो अपने दायें हाथको सदा वस्त्रसे ढके रखकर जप करता है, उसीका जप सफल होता है, जो ऐसा नहीं करता, उसका जप निष्फल होता है[५]। मन्त्र-जपकी

यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः॥
(विश्वामित्रकल्प)

१-शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत्।
अपरैर्न श्रुतः किञ्चित् स उपांशुर्जपः स्मृतः॥ (,, ,,)

२-धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद् वर्णं पदात् पदम्।
शब्दार्थचिन्तनं भूप कथ्यते मानसो जपः॥ (,, ,,)

३-ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत्।
वानप्रस्थश्च संन्यस्तो द्विसहस्राधिकं जपेत्॥ (मनु०)

४-मनःसंतोषणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम्।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः॥ (व्यास)

५-वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत्।
तस्य स्यात्सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं मतम्॥ (,,)

गिनती अवश्य रखनी चाहिये; क्योंकि बिना संख्याका जप आसुर[१] जप कहलाता है। किंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि उपर्युक्त विधि केवल मन्त्र-जपके ही विषयमें है। प्रतिक्षण भगवान्‌के नामस्मरण एवं कीर्तनमें यह अनिवार्य नहीं है। जपके लिये रुद्राक्ष, तुलसी और चन्दन आदिकी मालाओंका उपयोग किया जा सकता है। करमालासे भी जप किया जाता है, उसका स्वरूप इस प्रकार है—अनामिका अङ्गुलीके मध्यभागसे लेकर कनिष्ठाके पोरुओंपर होते हुए तर्जनीके मूलतक दस पोरुओंपर क्रमशः जप करे। मध्यमाके जो दो पर्व (पोरु) शेष रहते हैं, उन्हें मालाका सुमेरु समझकर उनका उल्लङ्घन कभी नहीं करना चाहिये, अर्थात् उनको छोड़ देना चाहिये[२] तथा दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंपर दस मन्त्र जपकर बायें हाथकी अनामिका अङ्गुलीके मध्यभागपर वह एक दहाईकी एक संख्या गिने। इसी प्रकार बायें हाथकी अनामिका अङ्गुलीके मध्यभागसे लेकर कनिष्ठाके पोरुओंपर होते हुए तर्जनीके मूलतक दस पोरुओंपर क्रमशः दस बार गिन ले। इस तरह १०० संख्या हो जाती है। फिर आठ मन्त्र दाहिने हाथपर पूर्वोक्त क्रमसे और जप कर ले।

जपकालमें गायत्रीके आदि और अन्तमें भी प्रणव लगाना चाहिये। योगी याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—

ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्ततः परम्।
गायत्रीं प्रणवं चान्ते जप्यं ह्येवमुदाहृतम्॥

अर्थात् पहले 'ॐ' कारका उच्चारण करना चाहिये, फिर

१-असंख्यमासुरं यस्मात्तस्मात्तद् गणयेद् ध्रुवम्। (बृ० प० सं०)

२-तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु॥
मध्यमाङ्गुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत्।
तद्वै मेरुं विजानीयाज्जपे तं नातिलङ्घयेत्॥ (गायत्रीकल्प)

'भूर्भुवः स्वः' इन तीन व्याहृतियोंका, तत्पश्चात् गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करके अन्तमें भी प्रणव लगाना चाहिये। गायत्री-मन्त्रका जप ऐसा बताया गया है।

कुछ लोग **'गृहस्थो ब्रह्मचारी च प्रणवाद्यामिमां जपेत्'** इत्यादि वचनके अनुसार गृहस्थ और ब्रह्मचारीके लिये आदिप्रणवा गायत्री मानते हैं। परंतु हरिहर आदि भाष्यकारोंने अन्तमें भी प्रणवका समर्थन किया है। श्रीवीरमित्रोदयने अपने आह्निकप्रकाशमें आद्यन्तप्रणवा गायत्रीका जप ही सिद्धान्तित माना है। वास्तवमें पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यके वचनानुसार जपकालमें सबके लिये आद्यन्तप्रणवा गायत्रीका ही उपयोग उचित है। अन्यत्र गृहस्थ और ब्रह्मचारीको 'आदिप्रणवाका' उपयोग करना चाहिये।

सूर्य-प्रदक्षिणा

गायत्री-जपके पश्चात् **'ॐविश्वतश्चक्षुः०'** इस मन्त्रसे परमात्मस्वरूप भगवान् श्रीसूर्यनारायणकी प्रदक्षिणा की जाती है। यह प्रदक्षिणा एक ही बार की जाती है। हरिहरभाष्य आदिमें संध्या और तर्पण-कर्ममें की जानेवाली सूर्य-प्रदक्षिणाको एक ही बार करनेके लिये लिखा है। बह्वृचपरिशिष्ट तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें जो सूर्यकी दो[१] बार और सात[२] बार प्रदक्षिणा करनेका उल्लेख मिलता है, वह सूर्यकी प्रतिमाके लिये है। साक्षात् भगवान् सूर्यनारायणकी एक ही प्रदक्षिणा की जाती है ऐसा ही सम्प्रदाय भी है।

जप-निवेदन

प्रदक्षिणाके पश्चात् अपने आसनपर आसीन हो **'देवा गातुविदो०'**

१-एकां विनायके कुर्याद् द्वे सूर्ये सप्त ईश्वरे।

(बह्वृचपरिशिष्ट)

२-अन्यत्र तु—एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके।
हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्धप्रदक्षिणा ॥

इत्यादि मन्त्रसे जपयज्ञको भगवदर्पण किया जाता है। यह बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कर्म है। भगवदर्पणपूर्वक किया हुआ सत्कर्म ही भवबन्धनसे मुक्ति दिलानेवाला होता है।

विसर्जन

इस प्रकार जप-निवेदनके पश्चात् **'उत्तमे[१] शिखरे॰'** इत्यादि अनुवाक पढ़कर परमात्मरूपा गायत्रीदेवीका विसर्जन करना चाहिये। तदनन्तर सम्पूर्ण संध्योपासनकर्म भगवान्‌को समर्पण कर न्यूनताकी पूर्तिके लिये भगवान्‌से अभ्यर्थना करते हुए इस कार्यको समाप्त करना उचित है।

एक आवश्यक बात

कुछ लोग कहा करते हैं; संस्कृत भाषामें बने हुए मन्त्रोंका ही उच्चारण करके संध्या क्यों की जाय? उनका किसी भी भाषामें अनुवाद करके उनके भावोंका अनुस्मरण करते हुए संध्योपासना करनेमें क्या हानि है? ऐसी शङ्का करनेवाले महानुभावोंसे निवेदन है कि संध्या एक विशेष प्रकारके वैदिककर्मकी संज्ञा है। इसके महत्त्वका श्रुति, स्मृति तथा पुराणोंमें अनेकों स्थलोंपर प्रतिपादन किया गया है। यह **'अथ'**से **'इति'** तक जिस प्रकार विहित है, उसीके अनुसार यथावत्-रूपसे पालन करनेपर ही इसके उद्देश्य अथवा फलकी सिद्धि होती है, अनुवाद करके करनेसे नहीं। किसी प्रार्थना-सम्बन्धी मन्त्रका अनुवाद करके उससे भावोंका स्मरण करना अथवा स्वतः कोई पद्य या गद्य बनाकर भगवान्‌का स्तवन करना भी उत्तम कार्य है, इससे भी कल्याण ही होता है। परंतु इससे संध्योपासनारूप नित्यकर्मका पालन नहीं हो सकता और इस प्रकार नित्यकर्मके त्यागके दोषोंसे छुटकारा

१-तत उद्वास्य गायत्रीमुत्तमेत्यनुवाकतः। (व्याससमृति)

पाना असम्भव है। यह ध्यान रहे कि वेदोंकी आज्ञा प्रभुसम्मित है, जिस प्रकार राजाज्ञाका अक्षरशः पालन करना पड़ता है, उसी प्रकार वेदोंकी आनुपूर्वीका अक्षरशः अपरिवर्तितरूपमें स्वाध्याय किया जाता है और ऐसा करनेपर ही वेदके स्वाध्यायका फल होता है। अनुवादका स्वाध्याय लाभदायक होनेपर भी उसका उतना ही महत्त्व है, जितना हम कोई स्वतन्त्र गद्य-पद्यमय प्रार्थना लिखकर उससे भगवत्स्तवन करनेका महत्त्व समझते हैं। मन्त्रोंका आशय समझनेके लिये अनुवाद आदिके द्वारा सहायता लेनेमें कोई हर्ज नहीं है। वैदिक कर्म करते समय उसमें उपयुक्त हुए मन्त्रोंका ज्यों-का-त्यों उच्चारण करना चाहिये। अनुवाद तो दूर रहे, स्वर और मात्रातकका परिवर्तन हो जानेसे मन्त्र अशुद्ध हो जाता है और उसका कुफल भोगना पड़ता है।

निरुक्तकार कहते हैं—'**पुरुषविद्यानित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिमन्त्रो वेदे।**' अर्थात् 'मनुष्य अल्पज्ञ है, अतः उसकी विद्या अनित्य है।' उस अनित्य, अपूर्ण एवं संदिग्ध ज्ञानसे कभी सत्कर्मोंकी सिद्धि नहीं हो सकती, अतः वैदिक मन्त्रोंके द्वारा ही कर्म-सम्पादन होना चाहिये। अस्तु, अब संध्या-मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताका विचार किया जाता है।

संध्या-मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताका विचार

वैदिक मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताका ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। किसी भी मन्त्रका कर्ममें विनियोग करनेसे पहले उसके ऋषि आदिका स्मरण कर लेनेके लिये महर्षियोंने बहुत जोर दिया है। योगी याज्ञवल्क्यजीका कथन है कि द्विजको, विशेषतः ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रयत्न करके मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताका ज्ञान प्राप्त करे[१]। जो इनका ज्ञान प्राप्त किये बिना ही मन्त्रसे यजन-याजन,

---

१-आर्षं छन्दश्च दैवत्वं विनियोगस्तथैव च।
वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः॥ (याज्ञवल्क्य)

अध्ययन-अध्यापन और जप-होमादिका अनुष्ठान करता है, उसके उस कर्मका अल्प फल मिलता है[१]। जिस महर्षिने जिस मन्त्रका सबसे पहले साक्षात्कार किया तथा जिसने उस मन्त्रद्वारा सर्वप्रथम सिद्धि प्राप्त की, वही उस मन्त्रका द्रष्टा ऋषि माना गया[२]। जिसके द्वारा हम लौकिक और पारमार्थिक—दोनों प्रकारका लाभ उठाते हैं, उस मन्त्रके द्रष्टाको न जानना अथवा उस द्रष्टाको स्मरण आदिके द्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पण न करना कितनी बड़ी कृतघ्नता है ? अतः सभीको उसका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। ऋषिकी ही भाँति छन्दके ज्ञानका भी बड़ा ही महत्त्व है। जिस प्रकार शरीरको वस्त्र ढकता है वैसे ही मन्त्रोंको छन्द ढके हुए हैं; मन्त्रोंका आच्छादन करनेके कारण ही उन्हें छन्द कहते हैं। कहते हैं, पूर्वकालमें देवताओंने मृत्युसे भयभीत होकर छन्दोंके द्वारा ही अपने स्वरूपको छिपा दिया था, जिससे मृत्युकी दृष्टि उनपर न पड़ी, इसीलिये वेदमन्त्र सनातन और अविनाशी है। जिस-जिस मन्त्रके द्वारा जिस किसी देवताका प्रतिपादन हुआ है, वही उस मन्त्रका देवता है।[३]

आजकल संध्याकी विभिन्न पुस्तकोंमें मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताके सम्बन्धमें अनेक पाठ-भेद मिलते हैं। किसी पुस्तकमें एक ही मन्त्रके जो ऋषि आदि हैं, दूसरी पुस्तकमें दूसरे रूपमें देखे जाते हैं। इसके कारण तथ्यके जिज्ञासुओंके हृदयमें बड़ा ही संदेह खड़ा हो गया है। लोगोंका विश्वास उठता जा रहा है और ऋषि आदिका उल्लेख

१-अविदित्वा तु यः कुर्याद् यजनाध्यापनं जपम्।
होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत्॥ (याज्ञवल्क्य)

२-येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै।
मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तमृषेर्भावस्तदार्षकम्॥ (")

३-यस्य यस्य तु मन्त्रस्य उद्दिष्टा देवता तु या।
तदाकारं भवेत्तस्य देवत्वं देवतोच्यते॥ (")

अनावश्यक जान पड़ने लगा है। बात ठीक भी है, जब एक ही मन्त्रके विषयमें अनेक ऋषियोंका उल्लेख मिलता है तो बिना किसी प्रबल प्रमाणके उनमेंसे किसको ठीक माना जाय ? यदि ठीक निर्णय न हो तो किसी भी विचारशीलका उसपर विश्वास होना और उसको जाननेके लिये प्रयत्न करना कैसे सम्भव हो सकता है ? यह विषय इतना दुर्बोध नहीं है, जिसके तथ्यका निर्णय करनेमें विशेष कठिनाई हो। केवल लोगोंकी उपेक्षासे ही इस विषयमें अबतक अन्धकार फैलता आया है। इसीका निवारण करनेके लिये यहाँ प्रत्येक मन्त्रके ऋषि आदिका अनुसंधानपूर्वक विचार किया जा रहा है।

इस विषयका निर्णय करनेके लिये सबसे प्राचीन ग्रन्थ वैदिक सर्वानुक्रमसूत्र हैं। उनमें प्रायः वेदके सभी मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताओंका उल्लेख है। छन्दोंका निर्णय पिङ्गल-सूत्रसे भी होता है। इसी प्रकार जिस मन्त्रके ऋषि और देवताका अनुक्रमसूत्रोंमें उल्लेख नहीं है, उसके तथा वेदकी जिस शाखाके अनुक्रमसूत्र नहीं उपलब्ध होते, उस शाखावाले मन्त्रोंके ऋषि आदिका निर्णय करनेके लिये अन्य युक्तियाँ भी दी गयी हैं, जिनका स्पष्टीकरण उन मन्त्रोंके ऋषि आदिका निश्चय करते समय हो जायगा।

संध्यामें पहले **'ऋतं च०'** यह मन्त्र आया है, यह ऋग्वेदका मन्त्र है। ऋक्सर्वानुक्रमसूत्रमें इसके ऋषि आदिका इस प्रकार उल्लेख है—**'ऋतं च माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्तमानुष्टुभं तु।'** अर्थात् **'ऋतं च०'** मन्त्रके माधुच्छन्दस अघमर्षण ऋषि, भाववृत्त देवता और अनुष्टुप् छन्द हैं। कुछ प्रतियोंमें ऋषिके स्थानपर केवल 'अघमर्षण' का उल्लेख मिलता है, किंतु वह अधूरा नाम है, क्योंकि सूत्रमें **'माधुच्छन्दस अघमर्षण'** ऐसा पूरा नाम देखा जाता है। इस मन्त्रमें तीन अनुष्टुप् छन्द हैं। **'अनुष्टुब्गायत्रैः'** इस पिङ्गलसूत्रके अनुसार आठ-आठ अक्षरोंके चार पादोंका अनुष्टुप् छन्द होता है। वैदिक

छन्दोंमें अक्षर-गणनाको ही प्रधानता दी गयी है, लौकिक छन्दोंकी भाँति इनमें मात्रा तथा गुरु-लघुकी व्यवस्थाका पूर्णतया पालन नहीं देखा जाता। इस मन्त्रके पहले छन्दके दूसरे और तीसरे चरणोंमें अर्थात् **'तपसोऽध्यजायत'**, **'ततो रात्र्यजायत'**—इन पादोंमें यद्यपि सात-सात ही अक्षर हैं तो भी वैदिक छन्दोंके लिये स्वीकृत सरणिके अनुसार व्यूह (विशिष्ट ऊहा) के द्वारा इस संख्याकी पूर्ति कर ली जाती है। जैसे गायत्री-मन्त्रमें गायत्री छन्दके निर्वाहार्थ व्यूहके द्वारा **'वरेण्यम्'** के स्थानमें **'वरेणियम्'** पढ़कर एक अक्षरकी कमी पूरी कर ली जाती है, उसी प्रकार यहाँ भी **'ततो रात्रियजायत'**, **'तपसोऽधिजायत'** इस रूपमें व्यूहके द्वारा संख्याकी पूर्ति हो जाती है। अथवा **'ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भूरिजौ'**, **'द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ'**—इन पिङ्गलसूत्रोंके अनुसार यदि किसी छन्दमें एक अक्षरकी कमी हो तो उसकी निचृत् संज्ञा होती है, जैसे अनुष्टुप्में एक अक्षरकी कमी होनेपर वह 'निचृत् अनुष्टुप्' कहा जायगा, अनुष्टुप्के अतिरिक्त कोई दूसरा छन्द नहीं माना जायगा। इसी प्रकार एक अक्षर अधिक होनेपर उसकी 'भुरिक्' संज्ञा होगी, रहेगा वही छन्द, केवल उसकी 'भुरिक्' यह विशिष्ट संज्ञा हो जायगी। ऐसे ही दो अक्षर न्यून होनेपर वह छन्द 'विराट्' कहा जायगा और दो अक्षर अधिक होनेपर उसकी 'स्वराट्' संज्ञा होगी। उक्त सूत्रोंके अनुसार प्रस्तुत मन्त्रके पहले अनुष्टुप्में दो अक्षरोंकी कमी होनेसे वह 'विराट्' अनुष्टुप् होगा। तात्पर्य यह कि उसके अनुष्टुप् छन्द होनेमें कोई बाधा नहीं आयी। यद्यपि इस मन्त्रके तीसरे छन्दके अन्तिम पदमें **'रिक्षमथो स्वः'** इस प्रकार पाँच ही अक्षर होते हैं तो भी **'स्वः'** के स्थानमें व्यूहकी रीतिसे **'सुवः'** मानकर गिननेसे छः अक्षर होते हैं, फिर **'द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ'** के अनुसार दो अक्षरकी कमी होनेपर इसकी 'विराट् अनुष्टुप्' संज्ञा हुई, इस प्रकार इस पूरे मन्त्रमें 'अनुष्टुप् छन्द' अक्षुण्ण ही रहा।

इस मन्त्रके देवताके विषयमें अनेकों प्रतियोंमें भिन्न-भिन्न पाठान्तर उपलब्ध होते हैं, जैसे—'**भाववृत्तः**', '**भाववृत्तम्**', '**भावभृतम्**', '**भावभृधः**', '**भाववृत्तिः**' इत्यादि, परंतु उक्त ऋक्सर्वानुक्रमसूत्रके अनुसार '**भाववृत्तं दैवतम्**' यही पाठ शुद्ध है।

कहीं-कहीं '**रात्र्यजायत**' के स्थानमें '**रात्रिरजायत**' इस पाठका उल्लेख मिलता है, परंतु ऋग्वेद (अ० ८ अ० ८ व० ४८) में '**रात्र्यजायत**' ही पाठ है, अतः वही यहाँ लिया गया है।

इसके बाद प्राणायाम-मन्त्र आता है, इसमें भी सर्वप्रथम प्रणव (ॐ) है। प्रणवके ब्रह्म (ब्रह्मा) ऋषि हैं, दैवी गायत्री छन्द है और परमात्मा देवता हैं। तैत्तिरीय आरण्यक (१०।३३।१) में लिखा है—'**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, अग्निर्देवता ब्रह्म इत्यार्षम्, गायत्रं छन्दः परमात्मस्वरूपम्।**' तथा याज्ञवल्क्य-स्मृतिमें लिखा है '....**तस्य ब्रह्मार्षं च स्वयम्भुवः। गायत्री च भवेच्छन्दः अग्निर्दैवतमुच्यते॥**'—इन श्रौत-स्मार्त वचनोंके अनुसार यद्यपि प्रणवका छन्द 'गायत्री' और देवता अग्नि सिद्ध होता है तथा अन्य अनेकों प्रतियोंमें ऐसा ही पाठ भी है तथापि विचार करनेसे मालूम होता है कि यहाँ 'गायत्री' शब्द 'दैवी गायत्री' का ही नामैकदेश है, क्योंकि '**प्रथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री**' इस पिङ्गलसूत्रके अनुसार आठ-आठ अक्षरके तीन पादोंका गायत्री छन्द होता है। इस प्रकार गायत्री छन्दमें चौबीस अक्षर हुए, फिर एक अक्षरका प्रणव-मन्त्र गायत्री छन्द कैसे हो सकता है? अतः यह 'दैवी गायत्री' छन्द ही है; क्योंकि '**दैव्येकम्**' इस सूत्रके अनुसार एक अक्षरका 'दैवी गायत्री' छन्द ही होता है।

इसी प्रकार '**अग्निर्देवता**' के 'अग्नि' शब्दका अर्थ यहाँ परमात्मा ही है, अतएव प्रस्तुत पुस्तकमें 'परमात्मा देवता' लिखा गया है। उपर्युक्त आरण्यक मन्त्रमें भी '**परमात्मस्वरूपम्**' लिखकर इस

बातको स्वीकार किया गया है। याज्ञवल्क्यजीने **'ॐकारः परमं ब्रह्म'** इस कथनके द्वारा इसी अभिप्रायको व्यक्त किया है तथा **'तस्य वाचकः प्रणवः'** इस पातञ्जलसूत्रसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है।

प्रणवके बाद प्राणायाम-मन्त्रमें सात महाव्याहृतियाँ हैं, इन सबके ऋषि प्रजापति ही हैं। परंतु छन्द और देवता अलग-अलग सात माने गये हैं। कहीं-कहीं विश्वामित्र आदि सात ऋषियोंका भी उल्लेख मिलता है, इनमें भी **'विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः।'** इस प्राचीन वचनके अनुसार 'विश्वामित्र' शब्दसे प्रजापतिका ही ग्रहण होता है; क्योंकि वे ही परम प्राचीन आदि ऋषि हैं। अतः केवल प्रजापति ही सातों व्याहृतियोंके ऋषि निश्चित किये गये हैं। याज्ञवल्क्यजी भी यही कहते हैं—**'व्याहृतीनां च सर्वासामार्षं चैव प्रजापतिः।'** इनके सात[१] छन्द क्रमशः ये हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती। यद्यपि व्याहृतियोंमें इन छन्दोंके लक्षण संघटित नहीं होते तो भी याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंके वचनानुसार इनके उक्त छन्द माने जाते हैं। इन व्याहृतियोंके देवता क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र और विश्वेदेव हैं। इनमेंसे पूर्वोक्त तीन देवता **'भूर्भुवः स्वस्तिस्रो महाव्याहृतयोऽग्नि-वायुसूर्यदैवत्याः क्रमेण'** इस 'यजुःसर्वानुक्रमसूत्र'के अनुसार हैं, शेष चार व्याहृतियोंके चार देवता स्मृतिके अनुसार हैं; क्योंकि सर्वानुक्रमसूत्रमें तीन ही महाव्याहृतियोंके ऋषि आदिका उल्लेख है।

१-सप्तच्छन्दांसि यान्यासां तानि सम्यक्प्रवर्तयेत्।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च॥
त्रिष्टुप् च जगती चैव छन्दांस्येतानि सप्त वै।
(याज्ञवल्क्य)

'तत्सवितुः०' इत्यादि मन्त्रके विश्वामित्र (प्रजापति) ऋषि, गायत्री छन्द और सविता देवता 'यजुःसर्वानुक्रमसूत्र'[१] के ही अनुसार हैं। गायत्री छन्दमें चौबीस अक्षर होते हैं, अतः व्यूहके द्वारा यहाँ **'वरेणियम्'** पढ़कर संख्या-पूर्ति की जाती है—यह पहले बता चुके हैं।

प्राणायामका जो अन्तिम अंश **'आपो ज्योती०'** इत्यादि मन्त्र है उसे शिरोभाग कहते हैं, उसके प्रजापति ऋषि, यजुश्छन्द तथा ब्रह्मा, अग्नि और वायु देवता स्मार्तवचनके[२] अनुसार निश्चित किये गये हैं। किन्हीं-किन्हीं प्रतियोंमें इसका त्रिपदा गायत्री छन्द लिखा मिलता है, किंतु वह ठीक नहीं है, क्योंकि 'त्रिपदा गायत्री' छन्द गायत्रीसे अतिरिक्त नहीं है, त्रिपदा शब्द गायत्रीका ही विशेषण है। गायत्री ही आठ-आठ अक्षरके तीन पदोंवाली होती है। गायत्रीमें चौबीस अक्षर होते हैं और उक्त मन्त्रमें केवल पन्द्रह ही अक्षर हैं, अतः गायत्री या त्रिपदा गायत्री छन्द यहाँ नहीं हो सकता। इसलिये आर्ष-वचनानुसार इसमें 'यजुः' छन्द मानना ही ठीक है। जिसके अक्षरोंकी किसी छन्दके अनुकूल नियत गणना न हो तथा जिसमें पादावसान (इतने पादोंसे यह छन्द पूर्ण होता है—इस तरहका नियम) न हो वह 'यजुः[३]' छन्द कहलाता है।

प्राणायामके पश्चात् **'सूर्यश्च मा०'** इत्यादि आचमनके मन्त्र आते हैं। तीनों कालके आचमनके तीन मन्त्र हैं। तीनों ही मन्त्र

१-तत्सवितुर्विश्वामित्रः सावित्री गायत्री ॥ (यजुःसर्वानुक्रमसूत्र)

२-आपो ज्योती रस इति मन्त्रो यस्तु प्रकीर्त्यते।
तस्य प्रजापतिश्चार्षं यजुश्छन्दो विवक्षितम् ॥
ब्रह्माग्निवायुसूर्याश्च देवताः समुदाहृताः। (याज्ञवल्क्य)

३-अनियताक्षरापादावसानं यजुः।

तैत्तिरीय आरण्यक एवं कृष्ण यजुर्वेदके हैं। कृष्ण यजुर्वेदका कोई सर्वानुक्रमसूत्र नहीं है; अतः कृष्ण यजुर्वेदी द्विजलोग उक्त वेदके जो मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद अथवा ऋग्वेदमें मिलते हैं, उनके ऋषि आदिका निश्चय यजुःसर्वानुक्रम और ऋक्सर्वानुक्रमके अनुसार करते हैं। जो मन्त्र उक्त वेदोंमें नहीं मिलते, उनका आर्षवचनोंके अनुसार ही ऋषि आदि मानते हैं। उनकी पद्धतिसे अनुसंधान करनेपर उक्त तीनों मन्त्रोंके 'नारायण ऋषि' निश्चित होते हैं; क्योंकि उक्त तीनों मन्त्र नारायणोपनिषद्में मिलते हैं और नारायणोपनिषद्में आये हुए सभी मन्त्रोंके नारायण ही ऋषि हैं, अतः इन मन्त्रोंके भी वे ही ऋषि सिद्ध होते हैं। धर्मसिन्धुकारने भी नारायणको ही उक्त मन्त्रोंका ऋषि माना है।

'सूर्यश्च॰' और **'अग्निश्च॰'**— इन दो मन्त्रोंमें चौरासी-चौरासी अक्षर हैं। चौरासी अक्षरका प्रकृति छन्द होता है; अतः उक्त दो मन्त्रोंका 'प्रकृति' ही छन्द है। **'आपः पुनन्तु॰'** इत्यादि मन्त्रमें दो अनुष्टुप् छन्द हैं। अनुष्टुप् छन्दमें कुल बत्तीस अक्षर होते हैं। प्रस्तुत मन्त्रके पहले अनुष्टुप्में यद्यपि तैंतीस अक्षर हैं तथापि पूर्वोक्त नियमानुसार एक अक्षर अधिक होनेपर वह 'भुरिक्' अनुष्टुप् होगा। इस प्रकार वह अनुष्टुप् छन्द ही रहा। उक्त मन्त्रके दूसरे छन्दमें ठीक-ठीक बत्तीस अक्षर हैं। किसी-किसी प्रतिमें **'यदुच्छिष्टमभोज्यं च'** ऐसा पाठ मिलता है; किन्तु तैत्तिरीय आरण्यकमें **'च'** नहीं है। अतः प्रस्तुत पुस्तकमें भी वैसा ही पाठ रखा गया है। **'सूर्यश्च॰'** इस मन्त्रमें सूर्य, मन्यु, मन्युपति तथा रात्रिसे प्रार्थना की गयी है; अतः उक्त मन्त्रके ये चारों ही देवता हैं, केवल 'सूर्य' ही नहीं। इसी प्रकार **'अग्निश्च॰'** मन्त्रके भी अग्नि, मन्यु, मन्युपति तथा अहः देवता हैं, केवल अग्नि ही नहीं। **'आपः पुनन्तु॰'** इस मन्त्रके केवल **'आपः'**

(जल) ही देवता नहीं हैं, अपितु पृथ्वी, वनस्पति और ब्रह्म भी देवता हैं; क्योंकि प्रस्तुत मन्त्रमें इन सभी देवताओंसे अभ्यर्थना की गयी है। किसी-किसी प्रतिमें **'सूर्यश्च॰'** और **'अग्निश्च॰'**—इन मन्त्रोंमें **'यत्किञ्च'** के स्थानमें **'यत्किञ्चित्'** यह पाठ है तथा **'इदमहं मामममृतयोनौ'** की जगह **'इदमहममृतयोनौ'** ऐसा पाठ है, परंतु वह अशुद्ध है; क्योंकि तैत्तिरीय आरण्यकमें **'यत्किञ्च'** इत्यादि ही पाठ मिलता है।

आचमन-मन्त्रोंके पश्चात् **'आपो हि ष्ठा॰'** इत्यादि मार्जन-मन्त्र आता है। इस एक ही मन्त्रके अन्तर्गत तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचा तीन-तीन चरणोंकी है, प्रत्येक चरणमें आठ-आठ अक्षर हैं, अतः लक्षणके अनुसार तीन गायत्री छन्दोंमें यह मन्त्र पूर्ण हुआ है। सर्वानुक्रमसूत्रसे इस मन्त्रका गायत्री छन्द ही सिद्ध होता है। इसके सिन्धुद्वीप ऋषि और **'आपः देवता'** यजुःसर्वानुक्रमसूत्रके[१] ही अनुसार माने गये हैं।

इसके बाद **'द्रुपदादिव॰'** मन्त्र आता है। इसका सर्वानुक्रमसूत्र इस प्रकार है—**'द्रुपदादिवानुष्टुबापी'** इस सूत्रके अनुसार इसका अनुष्टुप् छन्द और आपः देवता हैं; किंतु ऋषि कौन है ? इसका सूत्रमें उल्लेख नहीं है। प्राचीन प्रतियोंमें सर्वत्र 'कोकिलराजपुत्र' ऋषिका उल्लेख मिलता है, किन्तु इसमें मूलभूत कोई श्रौत वचन नहीं है। यह मन्त्र यजुर्वेदके सौत्रामणी अध्यायका है, उस अध्यायके प्रायः सभी मन्त्रोंके अश्वि, सरस्वती और इन्द्र ऋषि हैं, अतः प्रकरणप्राप्त उक्त ऋषि ही इस मन्त्रके निश्चित किये गये हैं। इस मन्त्रके प्रथम चरणमें यद्यपि नौ अक्षर हैं तथापि पूर्वोक्त **'ऊनाधिकेनैकेव निचृद् भुरिजौ'** इस

१-आपो ह्यापं सिन्धुद्वीपस्तृचं गायत्रम्। (यजुःसर्वानुक्रमसूत्र)

नियमके अनुसार यह (भुरिक्) अनुष्टुप् छन्द ही है। अधिकांश प्रतियोंमें इसके विनियोगमें **'सौत्रामण्यवभृथे'** ऐसा पाठ देखा जाता है, परंतु संध्या-कर्ममें ऐसा उल्लेख ठीक नहीं जान पड़ता है, क्योंकि यहाँ सौत्रामणी-यज्ञका स्नान नहीं है। इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलको सिरपर धारण करनेकी परम्परा देखी जाती है। अतः **'शिरःसेके विनियोगः'**—यही लिखना उचित है। इसलिये इस प्रतिमें ऐसा ही पाठ रखा गया है।

इसके पश्चात् पुनः **'ऋतं च॰'** इत्यादि मन्त्र आता है। इसमें सब बातें पूर्ववत् हैं, केवल विनियोगमें थोड़ा-सा अन्तर है। पहली बार उपस्पर्शन (आचमन) में विनियोग है और दूसरी बार अघमर्षणमें।

तत्पश्चात् **'अन्तश्चरसि॰'** इत्यादि मन्त्र है। यह कात्यायन परिशिष्ट सूत्रका मन्त्र है, इसके ऋषि आदिके विषयमें कोई वचन उपलब्ध नहीं होता। प्रायः सभी प्रतियोंमें इसके तिरश्चीन ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और आपः देवता उपलब्ध होते हैं। अनुष्टुप् छन्द लक्षणके अनुसार यहाँ ठीक ही है। मन्त्रके अर्थपर विचार करनेसे इसके देवता **'आपः'** हैं—यह भी स्पष्ट हो जाता है। रह गयी ऋषिकी बात, सो इसका कोई दूसरा ऋषि है—इस बातका प्रमाण नहीं मिलता, अतः प्राचीन मान्यताके अनुसार तिरश्चीन ऋषि ही निश्चित किये गये हैं।

इसके अनन्तर सूर्यार्घ्यदानमें गायत्री-मन्त्रका विनियोगसहित उल्लेख हुआ है, इसके ऋषि आदिका विचार प्राणायाम-मन्त्रमें ही हो गया है।

इसके बाद सूर्योपस्थानके चार मन्त्र आते हैं। पहले मन्त्र (**'उद्वयं तमसस्परि॰'** इत्यादि) के **'उद्वयं सौर्यनुष्टुप् प्रस्कण्वस्य'** (यजुःस॰ सूत्र) इस सूत्रके अनुसार प्रस्कण्व ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और सूर्य देवता हैं। यद्यपि इसके **'स्वः पश्यन्त उत्तरम्'** इस द्वितीय चरणमें सात

ही अक्षर हैं तथापि व्यूहकी रीतिसे '**स्वः**' के स्थानमें '**सुवः**' पढ़नेसे आठ अक्षर हो जानेपर अनुष्टुप्‌का पूरा निर्वाह हो जाता है। कहीं-कहीं इस मन्त्रके 'हिरण्यस्तूप' ऋषि लिखे गये हैं, किन्तु उसमें भूल ही कारण हो सकती है।

दूसरे मन्त्र (**उदुत्यं जात०**) के भी '**उदुत्यं प्रस्कण्वः सौरी गायत्री**' (यजुःस० सू०) इस सूत्रके अनुसार 'प्रस्कण्व' ही ऋषि हैं। छन्द गायत्री और देवता सूर्य हैं। यद्यपि इसके तीसरे पादमें सात ही अक्षर हैं; अतः गायत्री छन्दके नियमसे विरुद्ध पड़ता है तो भी पूर्वोक्त नियमानुसार एक अक्षर कम होनेसे यह 'निचृद् गायत्री' छन्द ही रहा।

तीसरा मन्त्र '**चित्रं देवानाम्०**' इत्यादि है। इसके ऋषिके स्थानमें कहीं-कहीं 'कौत्स' का उल्लेख मिलता है; परंतु 'कुत्स आङ्गिरस ऋषि' लिखना ही ठीक है; क्योंकि यजुःसर्वानुक्रमसूत्रमें[1] ऐसा ही उल्लेख है। इसका छन्द 'त्रिष्टुप्' और देवता 'सूर्य' हैं, यद्यपि सूत्रमें देवताका उल्लेख नहीं है तो भी प्रकरणप्राप्त सूर्य ही देवता माने गये हैं तथा मन्त्रार्थपर विचार करनेसे भी यही निश्चित होता है। ग्यारह अक्षरोंके चार पादोंका एक 'त्रिष्टुप्' छन्द होता है, इसका इस छन्दमें पूर्णतया निर्वाह हुआ है। उपस्थानका चौथा मन्त्र है '**तच्चक्षुः०**' इत्यादि। इसका सर्वानुक्रमसूत्र इस प्रकार है—'**तच्चक्षुः पुर उष्णिक् सौरी। ऋचं वाचं पञ्चाध्यायीं दध्यङ्ङाथर्वणो ददर्श।**'

इसके अनुसार इस मन्त्रके दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि, पुर उष्णिक् छन्द और सूर्य देवता हुए। देवता और ऋषिमें तो कोई विवाद ही नहीं है; किंतु इस मन्त्रका पुर उष्णिक् छन्द ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि इस छन्दका लक्षण यहाँ संघटित नहीं होता, इसलिये सूत्रकी व्याख्यामें

१-चित्रं कुत्स आङ्गिरसस्त्रिष्टुभम्। (यजुःसर्वानुक्रमसूत्र)

भाष्यकार श्रीअनन्तदेवजीने इस पाठको जीर्ण बताकर दूसरा शुद्ध पाठ लिखा है। प्रमाणके लिये हम इस सूत्रकी व्याख्याका वह आवश्यक अंश उद्धृत कर देते हैं—**'तच्चक्षुः पुर उष्णिक् सौरी' इति तु जीर्णः पाठः स तु नोपपद्यते। अस्यां हि सप्तषष्टिरक्षराणि भवन्ति। पुर उष्णिक् चाष्टाविंशत्यक्षरा 'आद्यश्चेत् पुर उष्णिक् इति' [सूत्रेण] अतस्तल्लक्षणाभावान्नेयं पुर उष्णिक्। तेन तच्चक्षुर्ब्राह्मी त्रिष्टुप् सौरीति [युक्तः] पाठः। तच्चक्षुरित्येषा सौरी सूर्यदेवताका एकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप्। व्यूहेनात्यष्टिर्वा। पुर उष्णिक् तु कथमपि न घटत एव।** अर्थात् **'तच्चक्षुः पुर उष्णिक् सौरी'** यह जीर्ण पाठ है, यह युक्त नहीं जान पड़ता; क्योंकि इस मन्त्रमें सरसठ अक्षर होते हैं और **'आद्यश्चेत् पुर उष्णिक्'** इस सूत्रके नियमानुसार 'पुर उष्णिक्' छन्द अट्ठाईस अक्षरोंका होता है। अतः लक्षण-समन्वय न होनेके कारण यह मन्त्र 'पुर उष्णिक्' छन्द नहीं है। इस कारण यहाँ **'तच्चक्षुर्ब्राह्मी त्रिष्टुप् सौरी'** ऐसा पाठ उचित है। इसका अर्थ यह है—**'तच्चक्षुः०'** यह मन्त्र सौर—सूर्यदेवतासम्बन्धी है और इसमें एकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द है। अथवा व्यूहके द्वारा यह 'अत्यष्टि' छन्द भी हो सकता है, परंतु 'पुर उष्णिक्' तो किसी प्रकार भी संघटित नहीं होता।

इसके पश्चात् **'तेजोऽसि०'** इत्यादि मन्त्र है। इसमें दो मन्त्र हैं। **'तेजोऽसि···· मसि।'** यहाँतक एक मन्त्र है और **'धाम नामासि'** से लेकर दूसरा मन्त्र है। इसके ऋषि आदिके विषयमें सर्वानुक्रमसूत्रमें इस प्रकार लिखा है—**'तेजोऽसि धामाज्यं परमेष्ठिप्राजापत्यो दर्शपूर्णमासमन्त्राणामृषिर्देवा वा प्राजापत्याः।'** अर्थात् **'तेजोऽसि०'** इस मन्त्रके परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि हैं।' ये ही दर्शपूर्णमास-मन्त्रोंके ऋषि हैं। देवता आज्य अथवा प्राजापत्य हैं। इसके अनुसार इन

****

मन्त्रोंके ऋषि तो परमेष्ठी प्राजापत्य हैं ही, छन्दका उल्लेख नहीं है, देवता आज्य या प्राजापत्य हैं, परंतु इस मन्त्रके द्वारा सूर्यदेवताकी ही प्रार्थना होती है, अतः सूर्य ही इसका देवता होना चाहिये।

सूत्रकारने भी विकल्पसे प्राजापत्य देवता माना है। प्राजापत्य शब्दसे प्रजापतिके अपत्यरूपसे यहाँ सूर्यका ही ग्रहण जान पड़ता है। निरुक्तमें लिखा है—

'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।'

अर्थात् मन्त्रका ऋषि जिस कामनासे अपने मनोरथकी पूर्तिकी इच्छा रखते हुए जिस देवताके प्रति स्तुतिका प्रयोग करता है, वही उस मन्त्रका देवता होता है। इस दृष्टिसे भी सूर्य ही देवता निश्चित होते हैं।

इन दोनों मन्त्रोंके छन्दके सम्बन्धमें उक्त सर्वानुक्रमसूत्रकी व्याख्यामें इस प्रकार लिखा है—

'तेजोऽसि त्रिष्टुब् आसुरी पङ्क्तिर्वा धाम नाम एकविंशत्यक्षरा ऋगुष्णिक्।'

इसके अनुसार यहाँ 'यजुस्त्रिष्टुप्' और 'ऋगुष्णिक्'—ये दो छन्द निश्चित होते हैं। ग्यारह अक्षरोंका 'यजुस्त्रिष्टुप्' छन्द होता है और इक्कीस 'अक्षरोंका 'ऋगुष्णिक्'। इन दोनोंका यहाँ निर्वाह हुआ है।'

'गायत्र्यस्येकपदी॰' इस मन्त्रके विवस्वान् ऋषि हैं। स्वराण्महापङ्क्ति छन्द है और परमात्मा देवता हैं। यद्यपि पद्धतिकार आदि इस मन्त्रका विमल ऋषि मानते हैं तथापि—**'इषे त्वादि खं ब्रह्मान्तं विवस्वानपश्यत्'** इस यजुःसर्वानुक्रमसूत्रके अनुसार सम्पूर्ण यजुःसंहिताके 'विवस्वान् ऋषि' सिद्ध होते हैं। अतः यजुःसंहिताके जिन मन्त्रोंके विषयमें किसी अन्य विशेष ऋषिका उल्लेख न मिले, उनके विवस्वान् ऋषि माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त—

'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूँषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्ये-नाख्यायन्ते' ।

इस शतपथ ब्राह्मणवाक्यके अनुसार ब्राह्मण-मन्त्र भी आदित्यसे ही प्राप्त हुए हैं; अतः उपर्युक्त मन्त्रके ऋषि विवस्वान् ही निश्चित जान पड़ते हैं। सम्भव है, विवस्वान्‌के स्थानमें ही विमल पाठ हो गया हो। किसी-किसी प्रतिमें इस मन्त्रका 'पङ्क्ति' छन्द लिखा है, पर पङ्क्ति छन्द चालीस अक्षरोंका होता है और इसमें कुल पचास अक्षर हैं, अतः पङ्क्ति छन्द नहीं है; इसके अड़तालीस अक्षरोंसे महापङ्क्ति छन्द होता है, रह जाते हैं दो अक्षर—सो उनके रहनेपर **'द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ'** के नियमानुसार यह 'स्वराण्महापङ्क्ति' छन्द हुआ। गायत्री परमात्माका ही नाम है तथा गायत्री-मन्त्रसे परमात्माका ही स्तवन होता है; अतः इसका देवता परमात्मा ही है।

'विश्वतश्चक्षुः'[१] सर्वानुक्रमसूत्रके अनुसार इसके 'भौवन ऋषि', 'त्रिष्टुप्' छन्द और विश्वकर्मा देवता हैं। ग्यारह अक्षरोंके चार पादोंका त्रिष्टुप् छन्द होता है, उसका इसमें पूर्णतया निर्वाह हुआ है।

'देवा गातुविदो॰' इस मन्त्रसे भी सर्वानुक्रमसूत्रके ही अनुसार मनसस्पति ऋषि हैं, विराट् अनुष्टुप् छन्द है, वात देवता हैं। अनुष्टुप् छन्दमें ३२ अक्षर होते हैं। प्रस्तुत मन्त्रमें कुल तीस अक्षर हैं, **'अतः द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ'** के नियमानुसार दो अक्षर कम होनेपर यह विराट् अनुष्टुप् छन्द हुआ।

अन्तमें निवेदन

प्रस्तुत भूमिकामें विशेषतः संध्याके सम्बन्धमें ही विचार किया गया है। तर्पण और बलिवैश्वदेव आदिके प्रकरणोंमें जो जाननेयोग्य

१-विश्वतश्चक्षुर्वैश्वकर्मणी त्रिष्टुभो विश्वकर्मा भावनः। (यजुःसर्वानुक्रमसूत्र)

बातें हैं, वे टिप्पणीमें दे दी गयी हैं और संक्षिप्त भावार्थसहित उनके प्रमाणवचनोंका भी टिप्पणीमें ही उल्लेख कर दिया गया है। जहाँतक हो सका है, इस पुस्तकमें नित्यकर्मके लिये उपयोगी सभी ज्ञातव्य विषयोंका संचयन करनेके लिये प्रयत्न किया गया है। संदिग्ध बातोंका निर्णय करके विधिको स्पष्ट करनेकी कोशिश की गयी है। इस कार्यमें हमलोगोंको कहाँतक सफलता मिल सकी है, इसका निर्णय तो विद्वान् पुरुष ही कर सकते हैं। हमें तो इतना ही कहना है कि इस प्रतिको शुद्ध बनानेके लिये यथासाध्य चेष्टा करनेपर भी मानव-स्वभावके अनुसार हमसे भूलें अवश्य हुई होंगी। उनके लिये हम कृपालु विद्वानोंसे नियमपूर्वक क्षमायाचना करते हैं। अन्तमें नित्यकर्मप्रयोगके रूपमें सम्पादित की हुई यह भगवदाराधनकी सामग्री उन परम पुरुष परमेश्वरके ही चरणोंमें सादर समर्पण करके प्रार्थना करते हैं कि करुणानिधान भगवान् इस तुच्छ भेंटको स्वीकार कर हमें अनुगृहीत करें।

विनीत,

सम्पादकवृन्द

॥ श्रीहरिः ॥

नित्यकर्म-प्रयोग

संध्योपासनविधि[1]

ब्राह्म मुहूर्तमें जब चार घड़ी रात बाकी रहे , शयनसे उठकर भगवान्‌का स्मरण करे; फिर शौच-स्नानके अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण करके पवित्र तथा एकान्त-स्थानमें कुश अथवा कम्बल आदिके आसनपर पूर्व, ईशान अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके बैठे [तीनों कालकी संध्यामें उपर्युक्त दिशाओंकी ओर ही मुँह करके बैठना चाहिये, केवल सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान और गायत्रीजप सूर्याभिमुख होकर करना आवश्यक है] । बायें हाथमें तीन कुश और दायें हाथमें दो कुशोंकी बनी पवित्री **'ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०'** इस मन्त्रसे धारण करे। कुशके अभावमें सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी अँगूठी पहनकर भी कार्य किया जा सकता है। ओंकार और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करके शिखा बाँध ले, यदि पहलेसे ही शिखा बँधी हो तो उसका स्पर्शमात्र कर ले। एक जोड़ा शुद्ध यज्ञोपवीत[2] धारण किये रहना आवश्यक है। देहपर धौतवस्त्रके अतिरिक्त एक उत्तरीय वस्त्र

१-संध्योपासनके सम्बन्धमें बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातोंको जाननेके लिये पुस्तकके आरम्भमें दी हुई भूमिका अवश्य पढ़ लेनी चाहिये।

२-यहाँ आवश्यक समझकर नूतन यज्ञोपवीत धारणका समय तथा उसकी संक्षिप्त विधिका उल्लेख किया जाता है। अशौच होनेपर—मूत्र-पुरीषोत्सर्ग करते समय दाहिने कानके ऊपर जनेऊ रखनेमें भूल होनेपर या उसके गिरने अथवा टूट जानेपर नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। इसके धारणकी संक्षिप्त विधि यह है—स्नानके अनन्तर आसनपर बैठकर आचमन करे, फिर यज्ञोपवीतको लेकर 'आपो हि ष्ठा०, इस मन्त्रद्वारा जलसे उसका अभिषेक करे। तत्पश्चात् उसके नौ तन्तुओंमें क्रमशः ॐकार, अग्नि, सर्प,

(चादर या गमछा आदि) डाले रहना चाहिये। उत्तरीय वस्त्रके अभावमें एक और यज्ञोपवीत (कुल मिलाकर तीन यज्ञोपवीत) धारण किये रहे। फिर किसी पात्रमें शुद्ध जल रखकर उसे बायें हाथमें उठा ले और दायें हाथके कुशसे अपने शरीरपर जल सींचते हुए निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

'मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशामें स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर सब ओरसे शुद्ध हो जाता है।'

फिर नीचे लिखे मन्त्रसे आसनपर जल छिड़ककर दायें हाथसे उसका स्पर्श करे—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

सोम, पितर, प्रजापति, वायु, यम और विश्वेदेवकी तथा तीन ग्रन्थियोंमें क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकी भावना करके—

यज्ञोपवीतमिति परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः लिङ्गोक्ता देवता श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानाधिकारसिद्ध्ये यज्ञोपवीतपरिधाने विनियोगः ।

यह विनियोग पढ़े और—

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

'इस मन्त्रको पढ़कर एक जोड़ा यज्ञोपवीत पहने। फिर कम-से-कम बीस बार गायत्री-मन्त्रका जप करे। बलिवैश्वदेव करनेवालेको तीन यज्ञोपवीत धारण करके कम-से-कम तीस बार गायत्रीका जप करना चाहिये। इसके बाद प्राचीन यज्ञोपवीतको गलेसे बाहर निकालकर 'समुद्रं गच्छ स्वाहा' इस मन्त्रको पढ़कर जलाशयमें फेंक दे। इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करनेके बाद ही संध्या आदि कर्म करनेका अधिकार होता है।

'हे पृथ्वी देवि ! तुमने सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर रखा है और भगवान् विष्णुने तुमको धारण किया है। हे देवि ! तुम मुझे धारण करो और मेरे आसनको पवित्र कर दो।'

इसके बाद यथारुचि शास्त्रानुकूल भस्म, चन्दन[1] आदिका तिलक करे।

तत्पश्चात् **'ॐ केशवाय नमः स्वाहा'**, **'ॐ नारायणाय नमः स्वाहा'**, **'ॐ माधवाय नमः स्वाहा'**—इन तीनों मन्त्रोंको पढ़कर प्रत्येकसे एक-एक बार [कुल तीन बार] पवित्र जलसे आचमन करे [आचमनके समय हाथ जानुओंके भीतर हो, पूर्व, ईशान या उत्तर दिशाकी ओर ही मुख हो। ब्राह्मण इतना जल पीये, जो हृदयतक पहुँच सके, क्षत्रिय उतना ही जल ग्रहण करे जो कण्ठतक पहुँच सके, वैश्य इतना जल ले जो तालुतक जा सके। उस समय ओठ बहुत न खोले, अङ्गुलियाँ परस्पर सटी रहें।

१-मृत्तिकां चन्दनं चैव भस्म तोयं चतुर्थकम्।
एभिर्द्रव्यैर्यथाकालमूर्ध्वपुण्ड्रं भवेत् सदा॥
(आह्निकप्रकाश)

यहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र शब्द तिलकके सभी प्रकारोंका उपलक्षक है, तात्पर्य यह कि तीर्थकी मिट्टी, चन्दन, भस्म अथवा जल—इन द्रव्योंसे समयानुसार सदा ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र आदि किया जाता है। [चन्दन देवताका प्रसाद ही धारण करे। केवल अपने लिये नहीं घिसना चाहिये।]

कुछ लोग भस्म और चन्दनमें गायत्री-मन्त्रका उपयोग करते हैं। सम्प्रदायनिष्ठ पुरुषोंको अपनी सम्प्रदाय-मर्यादाके अनुसार मन्त्रोंका उपयोग करना चाहिये। सर्वसाधारण स्मार्त पुरुषोंके लिये भस्मधारणका मन्त्र यहाँ लिखा जाता है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्व ँ् ह वा इद ँ् भस्म मन एतानि चक्षू ँ् षि' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करके 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इस मन्त्रसे ललाटमें 'कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इस मन्त्रसे गलेमें, 'यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इस मन्त्रसे दोनों भुजाओंके मूलमें और 'तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्' इस मन्त्रसे हृदयमें लगावे।

अङ्गुष्ठ और कनिष्ठिका अलग रहें। खड़ा न हो, हँसता न रहे। जलमें फेन या बुलबुले आदि न हों]। ब्राह्मतीर्थसे तीन बार आचमन करनेके पश्चात् '**ॐ गोविन्दाय नमः**' यह मन्त्र पढ़कर हाथ धो ले। इसके बाद दो बार अँगूठेके मूलसे ओठको पोंछे, फिर हाथ धो ले। अँगूठेका मूल ब्राह्मतीर्थ है। तत्पश्चात् भीगी हुई अङ्गुलियोंसे मुख आदिका स्पर्श करे। मध्यमा-अनामिकासे मुख, तर्जनी-अङ्गुष्ठसे नासिका, मध्यमा-अङ्गुष्ठसे नेत्र, अनामिका-अङ्गुष्ठसे कान, कनिष्ठिका-अङ्गुष्ठसे नाभि, दाहिने हाथसे हृदय, सब अङ्गुलियोंसे सिर, पाँचों अङ्गुलियोंसे दाहिनी बाँह और बायीं बाँहका स्पर्श करना चाहिये।

तदनन्तर हाथमें जल लेकर निम्नाङ्कित संकल्प पढ़कर वह भूमिपर गिरा दे—

हरिः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेत-वाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे[1] अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा[2] अहं ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः [सायं अथवा मध्याह्न-] संध्योपासनं करिष्ये।

इसके बाद निम्नाङ्कित विनियोग पढ़े—

ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तं दैवतमपामुपस्पर्शने विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्रको एक बार पढ़कर एक ही बार आचमन करे—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्य-

१-'अमुक' शब्दके स्थानमें संवत्सर, मास आदिका नाम जोड़ लेना चाहिये।
२-ब्राह्मण अपने नामके आगे शर्मा, क्षत्रिय वर्मा और वैश्य गुप्त शब्दका प्रयोग करे।

जायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः।

(ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४८)

'[महाप्रलयके बाद इस महाकल्पके आरम्भमें] सब ओरसे प्रकाशमान तपरूप परमात्मासे ऋत (सत्संकल्प) और सत्य (यथार्थ भाषण) की उत्पत्ति हुई। उसी परमात्मासे रात्रि-दिन[1] प्रकट हुए तथा उसीसे जलमय समुद्रका आविर्भाव हुआ। जलमय समुद्रकी उत्पत्तिके पश्चात् दिनों और रात्रियोंको धारण करनेवाला कालस्वरूप संवत्सर प्रकट हुआ जो कि पलक मारनेवाले जङ्गम प्राणियों और स्थावरोंसे युक्त समस्त संसारको अपने अधीन रखनेवाला है। इसके बाद सबको धारण करनेवाले परमेश्वरने सूर्य, चन्द्रमा, दिव् (स्वर्गलोक), पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा महर्लोक आदि लोककी भी पूर्वकल्पके अनुसार सृष्टि की।'

तदनन्तर प्रणवपूर्वक गायत्री-मन्त्र पढ़कर रक्षाके लिये अपने चारों ओर जल छिड़के। फिर नीचे लिखे विनियोगको पढ़े—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्र[2] ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपोज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

१-यहाँ रात्रि-दिन शब्दसे ब्रह्माकी रात्रि और दिन समझने चाहिये।

२-'विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः।' इस वचनके अनुसार विश्वामित्र शब्दका अर्थ प्रजापति (ब्रह्मा) है।

इसके पश्चात् आँखें बंद करके नीचे लिखे मन्त्रसे प्राणायाम करे। उसकी विधि इस प्रकार है—'पहले दाहिने हाथके अँगूठेसे नासिकाका दायाँ छिद्र बंद करके बायें छिद्रसे वायुको अंदर खींचे, साथ ही नाभिदेशमें नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ कर जाय [यदि तीन बार मन्त्र-पाठ न हो सके तो एक ही बार पाठ करे और अधिकके लिये अभ्यास बढ़ावे] — इसको पूरक कहते हैं। पूरकके पश्चात् अनामिका और कनिष्ठिका अङ्गुलियोंसे नासिकाके बायें छिद्रको बंद करके तबतक श्वासको रोके रहे, जबतक कि प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार [या शक्तिके अनुसार एक बार] पाठ न हो जाय। इस समय हृदयके बीच कमलके आसनपर विराजमान अरुण-गौर-मिश्रित वर्णवाले चतुर्भुज ब्रह्माजीका ध्यान करे। यह कुम्भक-क्रिया है। इसके बाद अँगूठा हटाकर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे तबतक बाहर निकाले, जबतक प्राणायाम-मन्त्रका तीन [या एक] बार पाठ न हो जाय। इस समय शुद्ध स्फटिकके समान श्वेत वर्णवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरका ध्यान करे। यह रेचक-क्रिया है। यह सब मिलाकर एक प्राणायाम कहलाता है। प्राणायामका मन्त्र यह है—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।

(तै० आ० प्र० १० अ० २७)

'हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजनेयोग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो कि हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करते हैं और जो भू, भुवर्, स्वर्, महर्, जन, तपः और सत्य नामवाले समस्त

लोकोंमें व्याप्त हैं तथा जो सच्चिदानन्दस्वरूप जलरूपसे जगत्का पालन करनेवाले, अनन्त तेजके धाम, रसमय, अमृतमय और भूर्भुवः स्वःस्वरूप (त्रिभुवनात्मक) ब्रह्म हैं।'

फिर नीचे लिखा विनियोग पढ़े—

सूर्यश्च मेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यमन्युमन्युपतयो रात्रिश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्रको एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।

(तै० आ० प्र० १० अ० २५)

'सूर्य, क्रोधके अभिमानी देवता और क्रोधके स्वामी—ये सभी क्रोधवश किये हुए पापोंसे मेरी रक्षा करें [अर्थात् कृत पापोंको नष्ट करके होनेवाले पापोंसे बचावें]। रातमें मैंने मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न (उपस्थ) इन्द्रियसे जो पाप किये हों, उन सबको रात्रिकालाभिमानी देवता नष्ट करें। जो कुछ भी पाप मुझमें वर्तमान है, इसको और इसके कर्तृत्वका अभिमान रखनेवाले अपनेको मैं मोक्षके कारणभूत प्रकाशमय सूर्यरूप परमेश्वरमें हवन करता हूँ [अर्थात् हवनके द्वारा अपने समस्त पाप और अहंकारको भस्म करता हूँ]। इसका भलीभाँति हवन हो जाय।'

उपर्युक्त आचमन-मन्त्र प्रातःकालकी संध्याका है। मध्याह्न और सायंकालके केवल आचमन-मन्त्र प्रातःकालसे भिन्न हैं। मध्याह्नका विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है—

आपः पुनन्त्विति नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपः पृथिवी

ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

इस विनियोगको पढ़े। फिर नीचे लिखे मन्त्रको एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह ँ् स्वाहा॥

(तै० आ० प्र० १० अ० २३)

'जल पृथिवीको [प्रोक्षण आदिके द्वारा] पवित्र करे। पवित्र हुई पृथ्वी मुझे पवित्र करे। वेदोंके पति परमात्मा मुझे शुद्ध करें। मैंने जो कभी किसी भी प्रकार उच्छिष्ट या अभक्ष्य-भक्षण किया हो अथवा इसके अतिरिक्त भी मेरे जो पाप हों, उन सबको दूर करके जल मुझे शुद्ध कर दे तथा नीच पुरुषोंसे लिये हुए दानरूप दोषको भी दूर करके जल मुझे पवित्र करे। पूर्वोक्त सभी दोषोंका भलीभाँति हवन हो जाय।'

सायंकालके आचमनका विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है—

अग्निश्च मेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निमन्युमन्युपतयोऽहश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

इस विनियोगको पढ़े। फिर नीचे लिखे मन्त्रको एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

(तै० आ० प्र० १० अ० २४)

'अग्नि, क्रोधके अभिमानी देवता और क्रोधके स्वामी— ये सभी क्रोधवश किये हुए पापोंसे मेरी रक्षा करें [अर्थात् कृत

पापोंको नष्ट करके होनेवाले पापोंसे बचावें]। मैंने दिनमें मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न (उपस्थ) इन्द्रियसे जो पाप किये हों उन सबको दिनके अभिमानी देवता नष्ट करें। जो कुछ भी पाप मुझमें वर्तमान है इसको तथा इसके कर्तृत्वका अभिमान रखनेवाले अपनेको मैं मोक्षके कारणभूत सत्यस्वरूप प्रकाशमय परमेश्वरमें हवन करता हूँ [अर्थात् हवनके द्वारा अपने सारे पाप और अहंकारको भस्म करता हूँ]। इसका भलीभाँति हवन हो जाय।'

फिर निम्नाङ्कित विनियोगको पढ़े—

आपो हि ष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः।

इसके पश्चात् निम्नाङ्कित तीन ऋचाओंके नौ चरणोंमेंसे सात चरणोंको पढ़ते हुए सिरपर ही जल सींचे, आठवेंसे पृथ्वीपर जल डाले और फिर नवें चरणको पढ़कर सिरपर ही जल सींचे। यह मार्जन तीन कुशों अथवा तीन अङ्गुलियोंसे करना चाहिये। मार्जन-मन्त्र ये हैं—

ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः।

(यजु० अ० ११ मं० ५०, ५१, ५२)

'हे जल! तुम निश्चय ही कल्याणकारी हो, अतः [अन्नादि रसोंके द्वारा] बलकी वृद्धिके लिये तथा अत्यन्त रमणीय परमात्म-दर्शनके लिये तुम हमारा पालन करो। जिस प्रकार पुत्रोंकी तुष्टि

****

चाहनेवाली माताएँ उन्हें अपने स्तनोंका दुग्ध पान कराती हैं, उसी प्रकार तुम्हारा जो परम कल्याणमय रस है, उसके भागी हमें बनाओ। हे जल ! जगत्‌के जीवनाधारभूत जिस रसके अंशसे तुम समस्त विश्वको तृप्त करते हो, उस रसकी पूर्णताको हम प्राप्त हों [अर्थात् उस रससे हम पूर्णतया तृप्ति लाभ करें]। हे जल ! तुम हमें उस रसके भोक्ता बनाओ [अर्थात् उसे भोगनेकी क्षमता दो]।'

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोगको पढ़े—

द्रुपदादिवेत्यश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयोऽनुष्टुप्छन्द आपो देवताः शिरस्सेके विनियोगः।

फिर हाथमें जल लेकर उसे दाहिने हाथसे ढक ले और नीचे लिखे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे सिरपर छिड़क दे—

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।

(यजु० अ० २० मं० २०)

'जैसे पादुकासे अलग होता हुआ मनुष्य पादुकाके मलादि दोषोंसे मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार पसीनेसे भींगा हुआ पुरुष स्नान करनेके पश्चात् मैलसे रहित होता है तथा जैसे पवित्रक आदिसे घी शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जल मुझे पापोंसे शुद्ध करे [अर्थात् मुझे सर्वथा निष्पाप कर दे]।'

पुनः निम्नाङ्कित विनियोग-वाक्यको पढ़े—

ऋतञ्चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तं दैवतमघमर्षणे विनियोगः।

फिर दाहिने हाथमें जल लेकर नासिकामें लगावे और

[यदि सम्भव हो तो श्वास रोककर] नीचे लिखे मन्त्रको तीन बार या एक बार पढ़ते हुए मन-ही-मन यह भावना करे कि यह जल नासिकाके बायें छिद्रसे भीतर घुसकर अन्तःकरणके पापोंको दायें छिद्रसे निकाल रहा है, फिर उस जलकी ओर दृष्टि न डालकर अपनी बायीं ओर फेंक दे [अथवा वामभागमें शिलाकी भावना करके उसपर उस पापको पटककर नष्ट कर देनेकी भावना करे] ।

अघमर्षण-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः[१] ॥

(ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४८)

इसके पश्चात् नीचे लिखे विनियोग-वाक्यका पाठ करे—

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

फिर निम्नाङ्कित मन्त्रको एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥

(कात्यायनपरिशिष्टसूत्र)

१-इस मन्त्रका अर्थ पृष्ठ ५१ में दिया जा चुका है।

'हे जलरूप परमात्मन् ! तुम समस्त प्राणियोंके भीतर उनकी हृदयरूप गुहामें विचरते हो, तुम्हारा सब ओर मुख है; तुम्हीं यज्ञ हो, तुम्हीं वषट्कार (इन्द्रादिका भाग हविष्य) हो और तुम्हीं जल, प्रकाश, रस एवं अमृत हो।'

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यका पाठमात्र करे—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः।

फिर सूर्यके सामने एक चरणकी एँड़ी (पिछला भाग) उठाये हुए अथवा एक पैरसे खड़ा होकर या एक पैरके आधे भागसे खड़ा हो ॐकार और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रको तीन बार पढ़कर पुष्प मिले हुए जलसे सूर्यको तीन बार अर्घ्य दे। प्रातःकाल और मध्याह्नका अर्घ्य जलमें देना चाहिये। यदि जल न हो तो स्थलको भलीभाँति जलसे धोकर उसीपर अर्घ्यका जल गिरावे। परंतु सायंकालका अर्घ्य कदापि जलमें न दे। खड़ा होकर अर्घ्य देनेका नियम केवल प्रातः और मध्याह्नकी संध्यामें है; सायंकालमें तो बैठकर भूमिपर ही अर्घ्य-जल गिराना चाहिये। मध्याह्नकी संध्यामें एक ही बार अर्घ्य देना चाहिये और प्रातः एवं सायं-संध्यामें तीन-तीन बार। सूर्यार्घ्य देनेका मन्त्र [अर्थात् प्रणवव्याहृतिसहित गायत्री-मन्त्र] इस प्रकार है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्[१]।

१-गायत्री-मन्त्रका अर्थ आगे पृष्ठ ६३-६४ में देखिये।

इस मन्त्रको पढ़कर **'ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय इदमर्घ्यं दत्तं न मम'** ऐसा कहकर प्रातःकाल[1] अर्घ्य समपर्ण करे।

तदनन्तर नीचे लिखे वाक्यको पढ़कर विनियोग करे—

उद्वयमिति प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता, उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्निचृद्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता, चित्रमिति कुत्साङ्गिरस ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता, तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिरेकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

तदनन्तर प्रातःकालमें खड़ा होकर और सायंकालमें बैठे हुए ही अञ्जलि बाँधकर तथा मध्याह्नकालमें खड़ा हो दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर [यदि सम्भव हो तो] सूर्यकी ओर देखते हुए **'उद्वयम्०'** इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़कर उन्हें प्रणाम करे। फिर अपने स्थानपर ही सूर्यदेवकी एक बार प्रदक्षिणा करते हुए उन्हें नमस्कार करके बैठ जाय। [मध्याह्नकालमें गायत्री-मन्त्र, विभ्राट्—अनुवाक, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्प और मण्डलब्राह्मणका भी यथासम्भव पाठ करना चाहिये[2] ।]

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।

(यजु० अ० २० मं० २१)

१-मध्याह्नकालमें 'ब्रह्मस्वरूपिणे'के स्थानमें 'रुद्रस्वरूपिणे' और सायंकालमें 'विष्णुस्वरूपिणे' ऐसा परिवर्तन कर लेना चाहिये।

२-गायत्र्या च यथाशक्ति विभ्राडित्यनुवाकपुरुषसूक्तशिवसंकल्पमण्डलब्राह्मणैरित्युपस्थाय प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्योपविशेत्।

(का० सू० क० २)

'हम अन्धकारसे ऊपर उठकर उत्तम स्वर्गलोकको तथा देवताओंमें अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्यदेवको भलीभाँति देखते हुए उस सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्माको प्राप्त हों।'

ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥

(यजु० अ० ७ मं० ४१)

'उत्पन्न हुए समस्त प्राणियोंके ज्ञाता उन सूर्यदेवको छन्दोमय अश्व सम्पूर्ण जगत्को उनका दर्शन कराने [या दृष्टि प्रदान करने] के लिये ऊपर-ही-ऊपर शीघ्रगतिसे लिये जा रहे हैं।'

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ् सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

(यजु० अ० ७ मं० ४२)

'जो तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्वके नेत्र हैं और स्थावर तथा जङ्गम सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हुए हैं।'

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्[१]॥

(यजु० अ० ३६ मं० २४)

१-इसके बाद कुछ प्रतियोंमें अङ्गन्यासका उल्लेख मिलता है, किन्तु धर्माब्धिसार आदि ग्रन्थोंमें न्यास आदि कर्मको अविवक्षित बताया है, अतः उसका करना न करना अपनी इच्छापर निर्भर है। जो लोग अङ्गन्यास करनेकी इच्छा रखते हों, उनकी सुविधाके लिये यहाँ अङ्गन्यास-विधि दी जाती है—

'देवता आदि सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाले और सबके नेत्ररूप वे तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशासे उदित हो रहे हैं। [उनके प्रसादसे] हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहें, सौ वर्षोंतक सुनते रहें, सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दीन-दशाको न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे अधिक कालतक भी हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं कभी दीन न हों।'

इसके बाद—

तेजोऽसीति धामनामासीत्यस्य च परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्त्रिष्टुबृगुष्णिहौ छन्दसी सविता देवता गायत्र्यावाहने विनियोगः।

इस विनियोगको पढ़कर निम्नाङ्कित मन्त्रसे विनयपूर्वक गायत्रीदेवीका आवाहन करे—

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि। धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ (यजु० अ० १। ३१)

ॐ हृदयाय नमः ॥ १ ॥ ॐ भूः शिरसे स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ भुवः शिखायै वषट् ॥ ३ ॥ ॐ स्वः कवचाय हुम् ॥ ४ ॥ ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट् ॥ ५ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट् ॥ ६ ॥

उपर्युक्त छः मन्त्रवाक्य अङ्गन्यासके हैं। इनमेंसे पहले वाक्यका उच्चारण कर दाहिने हाथकी पाँचों अङ्गुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। दूसरे वाक्यसे मस्तकका और तीसरेसे शिखाका स्पर्श करे। चतुर्थ वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अङ्गुलियोंसे दायें कंधेका स्पर्श करे। पञ्चम वाक्यसे दोनों नेत्रोंका स्पर्श करना चाहिये। छठा वाक्य पढ़कर दाहिने हाथको बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आवे और तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजावे।

'हे सूर्यस्वरूपा गायत्री देवि ! तुम देदीप्यमान तेजोमयी हो, शुद्ध हो और अमृत (नित्य ब्रह्मरूपा) हो। तुम्हीं परम धाम और नामरूपा हो। तुम्हारा किसीसे भी पराभव नहीं होता। तुम देवताओंकी प्रिय और उनके यजनकी साधनभूत हो [मैं तुम्हारा आवाहन करता हूँ]।'

फिर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यको पढ़े—

गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः स्वराण्महापङ्क्तिश्छन्दः परमात्मा देवता गायत्र्युपस्थाने विनियोगः।

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रसे गायत्रीको प्रणाम करे—

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत्॥

(बृहदारण्यक० ५।१४।७)

'हे गायत्रि ! तुम त्रिभुवनरूप प्रथम चरणसे एकपदी हो। ऋक्, यजुः एवं सामरूप द्वितीय चरणसे द्विपदी हो। प्राण, अपान तथा व्यानरूप तृतीय चरणसे त्रिपदी हो और तुरीय ब्रह्मरूप चतुर्थ चरणसे चतुष्पदी हो। निर्गुण स्वरूपसे अचिन्त्य होनेके कारण तुम 'अपद्' हो [इसीलिये वेद 'नेति-नेति' कहकर तुम्हारे स्वरूपका वर्णन करते हैं]। अतएव मन-बुद्धिके अगोचर होनेसे तुम सबके लिये प्राप्य नहीं हो। तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव करनेयोग्य) चतुर्थपदको, जो प्रपञ्चसे परे वर्तमान शुद्ध परब्रह्मस्वरूप है, नमस्कार है। तुम्हारी प्राप्तिमें विघ्न डालनेवाले वे राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिरूप पाप मेरे पास न पहुँच सकें [अर्थात् परब्रह्मस्वरूपिणी तुमको मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ][१]।

१-इस मन्त्रका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—

इसके अनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यको पढ़े—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

फिर नीचे लिखे अनुसार गायत्री-मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार माला आदिसे गिनते हुए जप करे। अधिक जहाँतक हो अच्छा है। जपके समय गायत्रीके तेजोमय स्वरूपका ध्यान और मन्त्रके अर्थका अनुसंधान होता रहे तो बहुत ही उत्तम है।

गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।

(यजु० अ० ३६ मं० ३)

'हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजनेयोग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करते हैं तथा

हे गायत्री देवि ! तुम समग्र ब्रह्मरूपा होनेके कारण एक पदवाली हो [अर्थात् जो कुछ है, वह ब्रह्मस्वरूप ही है, इस न्यायसे तुम एक पदवाली हो] सगुण-निर्गुणरूपा होनेसे तुम दो पदोंवाली हो। ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपसे तीन पदोंवाली हो। विराट् हिरण्यगर्भ, ईश्वर और परब्रह्मरूपा होनेके कारण तुम चार पदोंवाली हो। अचिन्त्य होनेसे तुम 'अपद्' हो, अतएव सबके लिये तुम प्राप्त नहीं हो। तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव करनेयोग्य) चतुर्थ पदको, जो प्रपञ्चसे परे वर्तमान शुद्ध परब्रह्मस्वरूप है, नमस्कार है। तुम्हारी प्राप्तिमें विघ्न डालनेवाले वे राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिरूप पाप मेरे पास न पहुँच सकें [अर्थात् परब्रह्मस्वरूपिणी ! तुमको मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ]।

जो भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकरूप सच्चिदानन्दमय परब्रह्म हैं।[१]

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्यका पाठ करे—

विश्वतश्चक्षुरिति भौवन ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विश्वकर्मा देवता सूर्यप्रदक्षिणायां विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्रसे अपने स्थानपर खड़े होकर सूर्यदेवकी एक बार प्रदक्षिणा करे—

ॐविश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः।[२]

(यजु० अ० १७ मं० १९)

'वे एकमात्र परमात्मा पृथिवी और आकाशकी रचना करते समय धर्माधर्मरूप भुजाओं और पतनशील पञ्चमहाभूतोंसे संगत होते अर्थात् काम लेते हैं। तात्पर्य यह है कि धर्माधर्मरूप निमित्त और पञ्चभूतरूप उपादान कारणोंसे अन्य साधनकी सहायता लिये बिना ही सबकी सृष्टि करते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं [अर्थात्

१-इस मन्त्रका अर्थ ऐसा भी है—

'सच्चिदानन्द विराट्स्वरूप सब संसारको उत्पन्न करनेवाले परमेश्वरके उस भजनेयोग्य तेजका हमलोग ध्यान करते हैं, जो हमलोगोंकी बुद्धियोंको अपने स्वरूपमें लगावें।'

२-प्रदक्षिणाका पौराणिक श्लोक इस प्रकार है—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे॥

सर्वत्र उनकी सभी इन्द्रियाँ हैं अथवा सब प्राणी परमेश्वरके स्वरूप हैं; अतः उनके जो नेत्र आदि हैं, वे उनमें व्याप्त परमात्माके ही नेत्र आदि हैं] ।'

इसके पश्चात् बैठकर निम्नाङ्कित विनियोगका पाठ करे—

ॐ देवा गातुविद इति मनसस्पतिर्ऋषिर्विराडनुष्टुप्छन्दो वातो देवता जपनिवेदने विनियोगः ।

फिर—

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञँ स्वाहा वाते धाः ।

(यजु० अ० २ मं० २१)

'हे यज्ञवेत्ता देवताओ ! आपलोग हमारे इस जपरूपी यज्ञको पूर्ण हुआ जानकर अपने गन्तव्य मार्गको पधारें। हे चित्तके प्रवर्तक परमेश्वर ! मैं इस जप-यज्ञको आपके हाथमें अर्पण करता हूँ। आप इसे वायुदेवतामें स्थापित करें।'[१]

इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करनेके अनन्तर—

अनेन यथाशक्तिकृतेन गायत्रीजपाख्येन कर्मणा भगवान् सूर्यनारायणः प्रीयतां न मम ।

यह वाक्य पढ़े। इसके बाद—

उत्तमे शिखरे इति वामदेव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः गायत्री देवता गायत्रीविसर्जने विनियोगः ।

इस विनियोगको पढ़कर—

१-वाते हि यज्ञोऽवतिष्ठते। तथा च श्रुतिः—वायुरेवाग्निस्तस्माद् यदैवाध्वर्युरुत्तमं कर्म करोत्यथैनमेवाप्येति।

ॐ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥

(तै० आ० प्र० १० प्र० ३०)

'हे गायत्री देवि ! अब तुम अपने उपासक ब्राह्मणोंके पाससे उनकी अनुमति लेकर भूमिपर स्थित जो मेरु नामक पर्वत है, उसकी चोटीपर विद्यमान जो सुरम्य शिखर है, वही तुम्हारा वासस्थान है; उसमें निवास करनेके लिये सुखपूर्वक जाओ।'

इस मन्त्रको पढ़कर गायत्री देवीका विसर्जन करे, फिर निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर यह संध्योपासनकर्म परमेश्वरको समर्पित करे—

अनेन संध्योपासनाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु।

फिर भगवान्‌का स्मरण करे—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

श्रीविष्णवे नमः॥ श्रीविष्णवे नमः॥

॥ इति श्रीविष्णुस्मरणात्परिपूर्णतास्तु॥

॥ इति॥

१-मध्याह्नकालमें 'ब्रह्मस्वरूपिणे'के स्थानपर 'विष्णुस्वरूपिणे' और सायंकालमें 'रुद्रस्वरूपिणे' ऐसा परिवर्तन कर लेना चाहिये।

२-गायत्र्या च यथाशक्ति विभ्राडित्यनुवाकपुरुषसूक्तशिवसंकल्पमण्डल-ब्राह्मणैरित्युपस्थाय प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्योपविशेत्।

(का० सू० क० २)

नित्यहोमविधि

प्रातःकाल स्नान-संध्या आदिके अनन्तर नित्यहोम करना चाहिये। नित्यहोम प्रातः और सायंकालमें किया जाता है। साग्निक पुरुष स्थापित अग्निमें नित्यहोम करते हैं, निरग्निक पुरुष **'पृष्टो दिवि'**-विधानके अनुसार नित्य हवनकालमें अग्नि स्थापित कर लेते हैं। आजकल अधिकांश लोग निरग्निक ही हैं, अतः उनकी सुविधाके लिये अग्निस्थापनपूर्वक हवनका प्रकार दिया जा रहा है। प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व हवनका मुख्य काल है, उसके बाद गौण काल है। सायंकालमें जबतक पश्चिममें लाली दिखायी दे और ताराएँ अच्छी तरह न उगी हों तभीतक हवनका मुख्य काल है, उसके पश्चात् गौण काल है।

पूर्वाभिमुख आसनपर बैठकर आचमन और प्राणायाम करके हाथमें कुशाकी पवित्री और जल ले निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर संकल्प करे—

ॐतत्सदद्य[१]……अमुकगोत्रः अमुकशर्मा अहं श्रीपरमेश्वरप्रीतये सायंप्रातर्होमं करिष्ये।

इसके बाद वेदी अथवा ताम्रकुण्डमें पञ्चभूसंस्कार करना चाहिये। तीन कुशोंसे भूमि अथवा ताम्रकुण्डको झाड़ दे, उन कुशोंको ईशानकोणमें फेंक दे, गोमय और जलसे लेपन करे। तत्पश्चात् स्रुवा अथवा तीन कुशोंद्वारा उत्तरोत्तर क्रमसे तीन-तीन पूर्वाग्र रेखाएँ करे। उल्लेखन-क्रमसे अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा तीन बार मृत्तिका उठाकर ईशानमें फेंक दे, फिर वहाँ जल छिड़के। इस प्रकार संस्कार करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे वहाँ अग्नि ले आवे। [पहले मन्त्रोंके विनियोग पढ़े।]

१-खाली स्थानपर संध्यामें दिये हुए संकल्पके अनुसार देश-कालकी योजना कर लेनी चाहिये।

अग्न्याहरणमन्त्र

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दोऽग्निर्देवता अग्न्यानयने विनियोगः ।

ॐ अन्वग्निरुषसामग्ग्रमक्ख्यदन्वहानि प्प्रथमो जात वेदाः । अनु सूर्य्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावा पृथिवीऽआततन्थ[१] ॥ (यजु० सं० ११ । १७)

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर पूर्वोक्त वेदी अथवा ताम्रकुण्डमें अग्निकी स्थापना करे ।

अग्निस्थापनमन्त्र

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्सऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वैश्वानरो देवता अग्निस्थापने विनियोगः ।

ॐ पृष्ट्टो दिवि पृष्ट्टोऽअग्निः पृथिव्व्यां पृष्ट्टो व्विश्वाऽओषधीरा विवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्ट्टोऽअग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम्[२] ॥

(यजु० सं० १८ । ७३)

१-जिन अग्निदेवने उषाकालके प्रारम्भमें क्रमशः प्रकाश फैलाया, फिर समस्त उत्पन्न वस्तुओंका ज्ञान रखनेवाले जिन प्रमुख देवने दिनोंको अभिव्यक्त किया तथा सूर्यकी किरणोंको अनेकों रंगरूपोंमें प्रकाशित किया और जो आकाश एवं पृथ्वीको सब ओरसे व्याप्त किये हुए हैं, उन अग्निदेवका हम साक्षात्कार कर रहे हैं।

२-द्युलोकमें [कौन आदित्यरूपसे तप रहा है ? इस प्रकार] जिनके विषयमें मुमुक्षुओंने प्रश्न किया है, पृथ्वी अर्थात् अन्तरिक्षलोकमें [कौन 'विद्युत्' रूपसे प्रकाशमान हो रहा है ? इस प्रकार] जिनके सम्बन्धमें जलार्थी लोगोंद्वारा प्रश्न किया गया है; जो सम्पूर्ण ओषधियों (व्रीहि-यव आदि अन्नों) में व्याप्त होकर मनुष्योंकी जिज्ञासाके विषय हो रहे हैं [अर्थात् ताप, फलपरिपाक और प्रकाशके द्वारा कौन समस्त प्राणियोंका उपकार और उनके जीवनकी रक्षा कर रहा है ? इस प्रकार जिन्हें जाननेके लिये लोग प्रश्न करते हैं] तथा यज्ञमें अध्वर्युद्वारा बलपूर्वक मन्थन करनेपर [यह किसके लिये मन्थन किया जा रहा है ? ऐसा] लोगोंने जिनके विषयमें प्रश्न किया है, वे वैश्वानर अग्निदेव दिनमें और रात्रिमें भी हमें नाशसे बचावें।

****

तदनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे अग्निका उपस्थान (प्रार्थना एवं प्रणाम) करे।

उपस्थानमन्त्र

समिधाग्निमिति तं त्वेति च देवा ऋषयो गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता अग्न्युपस्थाने विनियोगः।

ॐ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन[१] ॥

(यजु० सं० ३। १)

ॐ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य[२] ॥

(यजु० सं० ३। ३)

इसके पश्चात् नीचे लिखे [व्याहृतियोंसहित तीन] मन्त्रोंसे अग्निको प्रज्वलित करे।

अग्नि-प्रज्वालनमन्त्र

त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, ता ँ्सवितुरिति कण्व ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः सविता देवता, तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, विश्वानि देवेति नारायण ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता सन्धुक्षणे विनियोगः।

ॐ भूर्भुवः स्वः। ता ँ्सवितुर्व्वरेण्णयस्य चित्रामाऽहं व्वृणे

१-हे ऋत्विग्गण! आपलोग घृताक्त समिधासे अग्निदेवकी परिचर्या करें तथा आतिथ्यकर्मसे पूजनेयोग्य उन अग्निदेवको घीसे प्रज्वलित करें। फिर इस प्रज्वलित अग्निमें सब ओर नाना प्रकारके हविष्यका हवन करें।

२-हे अङ्गिरः—हे गतिशील अग्निदेव! प्रसिद्ध गुणोंसे युक्त आपको हम समिधा और घीसे प्रज्वलित कर रहे हैं। हे निर्जर देव! आप अत्यन्त देदीप्यमान होइये।

**सुमतीं व्विश्वजन्याम्। यामस्य कण्ण्वोऽअदुहत् प्रपीना ँ्
सहस्रधारां पयसामहीं गाम्।**[१]

(यजु० सं० १७।७४)

ॐ तत्सवितुर्वरेण्ण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥[२]

(यजु० सं० ३०।२)

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्नऽआसुव॥[३]

(यजु० सं० ३०।३)

इस प्रकार इन मन्त्रोंसे अग्निको प्रज्वलित करके बायें हाथमें तीन कुश रखे और खड़ा होकर प्रादेशमात्र लम्बी तीन घृताक्त समिधाएँ अग्निमें छोड़े । अग्निसमिन्धनका मन्त्र इस प्रकार है—

समिन्धन-मन्त्र

पुनस्त्वेति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता अग्नि-समिन्धने विनियोगः।

ॐ पुनस्त्वादित्या रुद्रा व्वसवः समिन्धताम्पुनर्ब्ब्रह्माणो

१-मैं वरण करनेयोग्य सविताकी विचित्र (नाना प्रकारके मनोवाञ्छित फल देनेमें समर्थ) तथा सब लोगोंका हित-साधन करनेवाली उस कल्याणमयी बुद्धिको अङ्गीकार करता हूँ, जिस गौरूपा बुद्धिका कण्व ऋषिने दोहन किया था तथा जो अत्यन्त पुष्ट सहस्रों क्षीर-धाराओंसे युक्त और दूधसे परिपूर्ण है।

२-हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वरके भजनेयोग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करते हैं।

३-हे सूर्यदेव ! सम्पूर्ण पाप दूर कर दो और जो कल्याणस्वरूप वस्तु है, वह हमें प्राप्त कराओ।

व्वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वंतन्वं व्वर्धयस्व सत्त्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥[१]

(यजु॰ सं॰ १२।४४)

फिर बैठकर जलसे अग्निका पर्युक्षण करे और घृत, दधि, खीर अथवा घृताक्त यव, चावल या तिल आदिसे अथवा मधुर फलसे निम्नलिखित मन्त्रोंद्वारा चार आहुतियाँ दे। [इनमें आरम्भकी दो आहुतियाँ सायंकालमें दी जाती हैं और अन्तकी दो आहुतियाँ प्रातःकालमें। सायंकालसे आरम्भ करे। सायं-प्रातः मिलकर एक दिनका होम है। सायंकालमें जिस द्रव्यसे होम करे उसीसे प्रातःकाल भी करे।]

[सायंहोम]

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।
ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम॥

[प्रातर्होम]

ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।
ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम॥

इसके पश्चात् अग्निकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे और—

त्र्यायुषमिति नारायण ऋषिरुष्णिक् छन्द आशीर्देवता भस्मधारणे विनियोगः।

इस वाक्यसे विनियोग करके—

१-हे अग्निदेव! आदित्य, रुद्र और वसुगण तुम्हें पुनः उद्दीप्त करें। हे वसुनीथ (धननायक)! ऋत्विक् और यजमानरूप ब्राह्मण लोग यज्ञोंके द्वारा तुम्हें फिरसे प्रज्वलित करें तथा तुम भी हमारे अर्पण किये हुए घीसे अपने शरीरको बढ़ाओ (प्रज्वलित करो) और तुम्हारे प्रज्वलित होनेपर यजमानकी कामनाएँ पूर्ण हों।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥[१]

(यजु० सं० ३। ६२)

इस मन्त्रसे होमके भस्मको क्रमशः ललाट, ग्रीवा, दक्षिण बाहुमूल और हृदयमें लगावे। इसके बाद निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर न्यूनतापूर्तिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करे।

ॐ प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः[२] **॥**
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्[३] **॥**
ॐविष्णवे नमः। ॐविष्णवे नमः ॥

अन्तमें निम्नाङ्कित वाक्य कहकर यह हवनकर्म भगवान्‌को अर्पण करे।

कृतेनानेन नित्यहोमकर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम्, न मम।

॥ इति ॥

१-'जमदग्नि ऋषि और कश्यप मुनिका जो तीनों (बाल्य, यौवन, जरा) अवस्थाओंकी आयुका समूह है तथा इन्द्र आदि देवताओंकी जो तीनों (बाल्य, कुमार और यौवन) अवस्थाओंकी आयुका समाहार है, वह हमें प्राप्त हो।'

२-यज्ञमें कर्म करनेवालेंका जो कर्म प्रमादवश विधिसे च्युत हो जाय, वह भगवान् विष्णुके स्मरणमात्रसे ही पूर्ण हो सकता है—ऐसा श्रुतिका वचन है।

३-जिनके स्मरण और नामोच्चारणसे तप, यज्ञ आदि क्रियाओंमें न्यूनताकी तत्काल पूर्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युतको मैं प्रणाम करता हूँ।

[देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणविधि]

प्रातःकाल ब्राह्मीवेलाके पूर्व शयनसे उठकर शौचादिसे निवृत्त हो किसी नदी, सरोवर या कुएँपर ही अपनी सुविधाके अनुसार स्नान करके शुद्ध उज्ज्वल वस्त्र पहनकर पूर्वाभिमुख हो कुशासनपर बैठे। फिर तीन बार आचमन[१] करके संध्योपासना एवं नित्यहोम करनेके पश्चात् बायें और दायें हाथकी अनामिका अङ्गुलिमें '**ॐ पवित्रे[२] स्थो वैष्णव्यौ०**'—इस मन्त्रको पढ़ते हुए पवित्री (पैंती) धारण करे। फिर हाथमें त्रिकुश, यव, अक्षत और जल लेकर निम्नाङ्कितरूपसे संकल्प पढ़े—

ॐ विष्णवे नमः ३। हरिः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) अहं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणं करिष्ये।

१-यहाँ आचमनका प्रकार बतलाया जाता है—'ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा।' इन तीन मन्त्रोंको पढ़कर प्रत्येकसे एक-एक बार (कुल तीन बार) एक-एक माशा जल पीना चाहिये, फिर 'ॐ गोविन्दाय नमः' इस मन्त्रसे दायाँ हाथ धोकर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रसे अपने ऊपर प्रदक्षिणक्रमसे जल सींचे।

२-इस मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—'हे पवित्र करनेवाले युगलकुशमय पवित्रको! तुम दोनों यज्ञसे सम्बन्ध रखनेवाले हो।'

तदनन्तर एक ताँबे अथवा चाँदीके पात्रमें[१] श्वेत चन्दन, चावल, सुगन्धित पुष्प और तुलसीदल रखे, फिर उस पात्रके ऊपर एक हाथ या प्रादेशमात्र लम्बे तीन कुश रखे, जिनका अग्रभाग पूर्वकी ओर रहे। इसके बाद उस पात्रमें तर्पणके लिये जल भर दे, फिर उसमें रखे हुए तीनों कुशोंको तुलसीसहित सम्पुटाकार दायें हाथमें लेकर बायें हाथसे उसे ढक ले और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए देवताओंका आवाहन करे—

ॐ विश्वेदेवास आगत शृणुता म इम ँ् हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत ॥ (यजु० ७। ३४)

'हे विश्वेदेवगण! आपलोग यहाँ पदार्पण करें, हमारे प्रेमपूर्वक किये हुए इस आवाहनको सुनें और इस कुशके आसनपर विराजमान हों।'

विश्वेदेवाः शृणुतेम ँ् हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥

(यजु० ३३। ५३)

'हे विश्वेदेवगण! आपलोगोंमेंसे जो अन्तरिक्षमें हों, जो द्युलोक (स्वर्ग) के समीप हों तथा अग्निके समान जिह्वावाले एवं यजन करनेयोग्य हों, वे सब हमारे इस आवाहनको सुनें और इस कुशासनपर बैठकर तृप्त हों।'

१-तर्पणमें सोना, चाँदी, ताँबा अथवा काँसका पात्र होना चाहिये, मिट्टीका नहीं, जैसा कि पितामहका वचन है—

हेमं रौप्यमयं पात्रं ताम्रकांस्यसमुद्भवम्। पितृणां तर्पणे पात्रं मृन्मयं तु परित्यजेत्॥

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ।
ये तर्पणेऽत्र विहिताः सावधाना भवन्तु ते ॥

जिनका इस तर्पणमें वेदविहित अधिकार है, वे महान् बलवाले महाभाग विश्वेदेवगण यहाँ आवें और सावधान हो जायँ ।

इस प्रकार आवाहनकर कुशका आसन दे और उन पूर्वाग्रकुशोंद्वारा[१] दायें हाथकी समस्त अङ्गुलियोंके अग्रभाग अर्थात् देवतीर्थसे ब्रह्मादि देवताओंके लिये पूर्वोक्त पात्रमेंसे एक[२]-एक अञ्जलि चावलमिश्रित जल लेकर दूसरे पात्रमें गिरावे और निम्नाङ्कितरूपसे उन-उन देवताओंके नाममन्त्र पढ़ता रहे—

१-देवताओंका तर्पण कुशके अग्रभागसे, मनुष्योंका मध्यभागसे और पितरोंका मूलाग्र एवं दक्षिणाग्रभागसे होना चाहिये। इसी प्रकार देवतर्पणमें पूर्वाभिमुख, मनुष्यतर्पणमें उत्तराभिमुख और पितृतर्पणमें दक्षिणाभिमुख रहना चाहिये। दक्षस्मृतिमें लिखा है—

प्रादेशमात्रमुद्धृत्य सलिलं प्राङ्मुखः सुरान्।
उदङ् मनुष्यांस्तृप्येत्तु पितॄन् दक्षिणतस्तथा॥
अग्रैस्तु तर्पयेद् देवान् मनुष्यान् कुशमध्यतः।
पितॄंस्तु कुशमूलाग्रैर्विधिः कौशी यथाक्रमम्॥

२-देवताओंको एक-एक, मनुष्योंको दो-दो और पितरोंको तीन-तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। स्त्रियोंमें माता, पितामही और प्रपितामही आदिको तीन-तीन, सौतेली माँ और आचार्य-पत्नीको दो-दो तथा अन्य सब स्त्रियोंको एक-एक अञ्जलि जल देना चाहिये। व्यासजी कहते हैं—

एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः।
अर्हन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन् स्त्रिय एकैकमञ्जलिम्॥

सांख्यायनः—मातृमुख्यास्तु यास्तिस्रस्तासां त्रींस्त्रीञ्जलाञ्जलीन्।
सपत्न्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जली॥

देवतर्पण

ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्। ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रुद्रस्तृप्यताम्। ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्। ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सरः सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम्। ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्। ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरितस्तृप्यन्ताम्। ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम्। ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्। ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्। ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्। ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यताम्।

ऋषितर्पण

इसी प्रकार निम्नाङ्कित मन्त्रवाक्योंसे मरीचि आदि ऋषियोंको भी एक-एक अञ्जलि जल दे—

ॐ मरीचिस्तृप्यताम्। ॐ अत्रिस्तृप्यताम्। ॐ अङ्गिरास्तृप्यताम्। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्। ॐ पुलहस्तृप्यताम्। ॐ क्रतुस्तृप्यताम्। ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्।

दिव्यमनुष्यतर्पण

इसके बाद जनेऊको मालाकी भाँति गलेमें धारणकर

****

[अर्थात् 'निवीती[१]' हो] पूर्वोक्त कुशोंको दायें हाथकी कनिष्ठिकाके मूलभागमें उत्तराग्र रखकर स्वयं उत्तराभिमुख हो निम्नाङ्कित मन्त्रवचनोंको दो-दो बार पढ़ते हुए दिव्य मनुष्योंके लिये प्रत्येकको दो-दो अञ्जलि यवसहित जल प्राजापत्यतीर्थ (कनिष्ठिकाके मूलभाग) से अर्पण करे—

ॐ सनकस्तृप्यताम् ॥ २ ॥ ॐ सनन्दनस्तृप्यताम् ॥ २ ॥ ॐ सनातनस्तृप्यताम् ॥ २ ॥ ॐ कपिलस्तृप्यताम् ॥ २ ॥ ॐ आसुरिस्तृप्यताम् ॥ २ ॥ ॐ वोढुस्तृप्यताम् ॥ २ ॥ ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम् ॥ २ ॥

दिव्यपितृतर्पण

तत्पश्चात् उन कुशोंको द्विगुण-भुग्न करके उनका मूल और अग्र-भाग दक्षिणकी ओर किये हुए ही उन्हें अँगूठे और तर्जनीके बीचमें रखे और स्वयं दक्षिणाभिमुख हो बायें घुटनेको पृथ्वीपर रखकर अपसव्य-भावसे (जनेऊको दायें कंधेपर रखकर) पूर्वोक्त पात्रस्थ जलमें काला

१-देवतर्पण तथा अन्य कार्योंमें यज्ञोपवीत बायें कंधेपर रहता है, इसकी उपवीत संज्ञा है। कण्ठमें मालाकी भाँति किया हुआ यज्ञोपवीत निवीत कहलाता है—'निवीतं कण्ठलम्बनम्' (औशनसस्मृति) दिव्य मनुष्योंके तर्पणमें यज्ञोपवीतको निवीतभावसे ही रखना चाहिये—

निवीती हन्तकारेण मनुष्यांस्तर्पयेदथ।
(वाचस्पति)

पितृकार्यमें यज्ञोपवीत दायें कंधेपर रहता है, इसको प्राचीनावीत या अपसव्य कहते हैं—

सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणेन धृतं द्विजैः।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि धारयेत्॥
(औशनसस्मृति)

तिल[१] मिलाकर पितृतीर्थसे (अँगूठा और तर्जनीके मध्यभागसे) दिव्य पितरोंके लिये निम्नाङ्कित मन्त्रवाक्योंको पढ़ते हुए तीन-तीन अञ्जलि जल दे। यथा—

ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ ॐ सोमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ ॐ यमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ ॐ अर्यमा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥ ३ ॥ ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥ ३ ॥ ॐ वर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥ ३ ॥

१-तिलसहित तर्पणका माहात्म्य वायुपुराणमें यों लिखा है—

तिलदर्भैस्तु संयुक्तं श्रद्धया यत्प्रदीयते।
तत्सर्वममृतं भूत्वा पितॄणामुपतिष्ठते ॥

'तिल और कुशाके साथ श्रद्धासे जो कुछ दिया जाता है, वह अमृतरूप होकर पितरोंको प्राप्त होता है।'

याज्ञवल्क्यने देवताओं, दिव्य मनुष्यों और पितरोंके लिये क्रमशः श्वेत, शबल और काले तिलका उपयोग बतलाया है—

शुक्लैस्तु तर्पयेद् देवान् मनुष्याञ्छबलैस्तिलैः।
पितॄंस्तु तर्पयेत्कृष्णैस्तर्पणे सर्वदा द्विजैः ॥

अग्निपुराणमें जीवत्पितृक (जिसका पिता जीवित हो उस) के द्वारा तिल-तर्पणका निषेध किया है—

दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च।
न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाघमाप्नुयात् ॥

****

यमतर्पण

इसी प्रकार निम्नलिखित मन्त्र-वाक्योंको पढ़ते हुए चौदह यमोंके लिये भी पितृतीर्थसे ही तीन-तीन अञ्जलि तिलसहित जल दे—

ॐ यमाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ धर्मराजाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ मृत्यवे नमः ॥ ३ ॥ ॐ अन्तकाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ वैवस्वताय नमः ॥ ३ ॥ ॐ कालाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ औदुम्बराय नमः ॥ ३ ॥ ॐ दध्नाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ नीलाय नमः ॥ ३ ॥ ॐ परमेष्ठिने नमः ॥ ३ ॥ ॐ वृकोदराय नमः ॥ ३ ॥ ॐ चित्राय नमः ॥ ३ ॥ ॐ चित्रगुप्ताय नमः ॥ ३ ॥

मनुष्यपितृतर्पण

इसके पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करे—

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आवाह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

(यजु० १९ । ७०)

'हे अग्ने! तुम्हारे यजनकी कामना करते हुए हम तुम्हें स्थापित करते हैं। यजनकी ही इच्छा रखते हुए तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। हविष्यकी इच्छा रखते हुए तुम भी तृप्तिकी कामनावाले हमारे पितरोंको हविष्य भोजन करनेके लिये बुलाओ।'

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥

(यजु० १९ । ५८)

'हमारे सोमपान करनेयोग्य अग्निष्वात्त[1] पितृगण देवताओंके

१-जिनके शरीरका अग्निने आस्वादन किया है अर्थात् इस लोकमें मृत्युके पश्चात्

साथ गमन करनेयोग्य मार्गोंसे यहाँ आवें और इस यज्ञमें स्वधासे तृप्त होकर हमें मानसिक उपदेश दें तथा वे हमारी रक्षा करें।'

तदनन्तर अपने पितृगणोंका[१] नाम-गोत्र आदि उच्चारण करते हुए प्रत्येकके लिये पूर्वोक्त विधिसे ही तीन-तीन अञ्जलि तिलसहित जल दे। यथा—

अमुकगोत्रः[२] अस्मत्पिता (बाप) अमुकशर्मा[३] वसुरूप-स्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा

जिनका शरीर दग्ध किया गया है, वे अग्निष्वात्त हैं।

१-तर्पणमें पितरोंका क्रम यों समझना चाहिये—

तातम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं
सस्त्रिस्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः।
ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग् जायापिता सद्गुरुः
शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे॥

'पिता, पितामह, प्रपितामह। माता, पितामही, प्रपितामही। सौतेली माता। मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह। मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही। पत्नी। पुत्र (सपत्नीक एवं पुत्रसहित)। पति-पुत्रसहित पुत्री। पत्नी-पुत्रादिसहित पितृव्य (चाचा)। मातुल (मामा)। स्वभ्राता तथा सौतेला भाई। पति-पुत्रादिसहित फूआ तथा मौसी। बहिन तथा सौतेली बहिन। पत्नी आदिसहित श्वशुर, सद्गुरु, शिष्य तथा आप्तपुरुष—ये सभी इसी क्रमसे महालयविधि (पितृपक्ष-श्राद्ध) तथा तीर्थश्राद्ध एवं तर्पणके पितर निश्चित किये गये हैं।

२-पारस्कर गृह्यसूत्रके अनुसार क्रमशः गोत्र-सम्बन्ध-नामका उच्चारण करना चाहिये।

३-बौधायनः—

शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु।
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः॥
चतुर्णामपि वर्णानां गोत्रत्वे पितृगोत्रता।
पितृगोत्रं कुमारीणामूढानां भर्तृगोत्रता॥

नमः ।। ३ ।। अमुकगोत्रः अस्मत्पितामहः (दादा) अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ।। ३ ।। अमुकगोत्रः अस्मत्प्रपितामहः (परदादा) अमुकशर्मा आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं[1] वा) तस्मै स्वधा नमः ।। ३ ।। अमुकगोत्रा अस्मन्माता अमुकी देवी दा[2] वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।। ३ ।। अमुकगोत्रा अस्मत्पितामही (दादी) अमुकी देवी दा रुद्ररूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।। ३ ।। अमुकगोत्रा अस्मत्प्रपितामही (परदादी) अमुकी देवी दा आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।। ३ ।। अमुकगोत्रा अस्मत्सापत्नमाता (सौतेली मा) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।। २ ।।

इसके बाद निम्नाङ्कित नौ मन्त्रोंको पढ़ते हुए पितृतीर्थसे जल गिराता रहे—

ॐ उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ।।

(यजु० १९ । ४९)

वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

तृप्यतामिति वक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना ।
आवाह्य पूर्ववन्मन्त्रैरास्तीर्य च कुशांश्च तान् ।।

१-इसी प्रकार अन्यत्र भी 'गङ्गाजल' से तर्पण करते समय योजना कर लेनी चाहिये ।

२-गोभिलसूत्रे—स्त्रीणां दान्तं नाम ज्ञेयम् ।

****

'इस लोकमें स्थित, परलोकमें स्थित और मध्यलोकमें स्थित सोमभागी पितृगण क्रमसे ऊर्ध्वलोकोंको प्राप्त हों । जो वायुरूपको प्राप्त हो चुके हैं, वे शत्रुहीन सत्यवेत्ता पितर आवाहन करनेपर [यहाँ उपस्थित हों] हमलोगोंकी रक्षा करें।'

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयँ् सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

(यजु० १९ । ५०)

'अङ्गिराके कुलमें, अथर्व मुनिके वंशमें तथा भृगुकुलमें उत्पन्न हुए नवीन गतिवाले एवं सोमपान करनेयोग्य जो हमारे पितर इस समय पितृलोकको प्राप्त हैं, उन यज्ञमें पूजनीय पितरोंकी सुन्दर बुद्धिमें तथा उनके कल्याणकारी मनमें हम स्थित रहें [अर्थात् उनकी मन-बुद्धिमें हमारे कल्याणकी भावना बनी रहे] ।'

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥

(यजु० १९ । ५८)

इस मन्त्रका अर्थ पहले (पृष्ठ ७९-८० में) आ चुका है ।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्त्रुतम् । स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ।

(यजु० २ । ३४)

'हे जल ! तुम स्वादिष्ट अन्नके सारभूत रस, रोग—मृत्युको दूर करनेवाले घी और सब प्रकारका कष्ट मिटानेवाले दुग्धका वहन करते हो तथा सब ओर प्रवाहित होते हो, अतएव तुम पितरोंके लिये हविस्वरूप हो, इसलिये मेरे पितरोंको तृप्त करो ।'

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः

****

स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्।

(यजु॰ १९।३६)

'स्वधा (अन्न) के प्रति गमन करनेवाले पितरोंको स्वधा[1] संज्ञक अन्न प्राप्त हो, उन पितरोंको हमारा नमस्कार है। स्वधाके प्रति जानेवाले पितामहोंको स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार है। स्वधाके प्रति गमन करनेवाले प्रपितामहोंको स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार है। पितर पूर्ण आहार कर चुके, पितर आनन्दित हुए, पितर तृप्त हुए। हे पितरो! अब आपलोग [आचमन आदि करके] शुद्ध हों।'

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ २ ॥ उ च न प्रविद्म त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञँ सुकृतं जुषस्व ॥

(यजु॰ १९।६७)

'जो पितर इस लोकमें वर्तमान हैं और जो इस लोकमें नहीं [किंतु पितृलोकमें विद्यमान] हैं तथा जिन पितरोंको हम जानते हैं और जिनको [स्मरण न होनेके कारण] नहीं जानते हैं, वे सभी पितर जितने हैं, उन सबको हे जातवेदा—अग्निदेव! तुम जानते हो। [पितरोंके निमित्त दी जानेवाली] स्वधाके द्वारा तुम इस श्रेष्ठ यज्ञका सेवन करो—इसे सफल बनाओ।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥

(यजु॰ १३।२७)

१-'स्वधा वै पितॄणामन्नम्' इति श्रुतेः।

'यज्ञकी इच्छा करनेवाले यजमानके लिये वायु मधु (पुष्परसमकरन्द) की वर्षा करती है। बहनेवाली नदियाँ मधुके समान मधुर जलका स्रोत बहाती हैं। समस्त ओषधियाँ हमारे लिये मधुर रससे युक्त हों।'

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ् रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

(यजु० १३। २८)

'हमारे रात-दिन सभी मधुमय हों। पिताके समान पालन करनेवाला द्युलोक हमारे लिये मधुमय—अमृतमय हो। माताके समान पोषण करनेवाली पृथ्वीकी धूल हमारे लिये मधुमयी हो।'

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ (यजु० १३। २९) **ॐ मधु। मधु। मधु। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्।**

'वनस्पति और सूर्य भी हमारे लिये मधुमान् (मधुर रससे युक्त) हों। हमारी समस्त गौएँ माध्वी—मधुके समान दूध देनेवाली हों।'

फिर नीचे लिखे मन्त्रका पाठमात्र करे—

ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त।

(यजु० २। ३२)

'हे पितृगण! तुमसे सम्बन्ध रखनेवाली रसस्वरूप वसन्त-ऋतुको नमस्कार है, शोषण करनेवाली ग्रीष्म-ऋतुको नमस्कार है, जीवनस्वरूप वर्षा-ऋतुको नमस्कार है, स्वधारूप शरद्-ऋतुको नमस्कार है, प्राणियोंके लिये घोर प्रतीत होनेवाली

****

हेमन्त-ऋतुको नमस्कार है; क्रोधस्वरूप शिशिर-ऋतुको नमस्कार है। [अर्थात् तुमसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी ऋतुएँ तुम्हारी कृपासे सर्वथा अनुकूल होकर सबको लाभ पहुँचानेवाली हों।] हे षड्ऋतुरूप[१] पितरो! तुम हमें [साध्वी पत्नी और सत्पुत्र आदिसे युक्त] उत्तम गृह प्रदान करो। हे पितृगण! इन प्रस्तुत दातव्य वस्तुओंको हम तुम्हें अर्पण करते हैं, तुम्हारे लिये यह (सूत्ररूप) वस्त्र है, इसे धारण करो।'

द्वितीय गोत्रतर्पण

इसके बाद द्वितीय गोत्र मातामह आदिका तर्पण करे, यहाँ भी पहलेकी ही भाँति निम्नलिखित वाक्योंको तीन-तीन बार पढ़कर तिलसहित जलकी तीन-तीन अञ्जलियाँ पितृतीर्थसे दे। यथा—

अमुकगोत्रः अस्मन्मातामहः (नाना) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्प्रमातामहः (परनाना) अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्वृद्धप्रमातामहः (बूढ़े परनाना) अमुकशर्मा आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मन्मातामही (नानी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्प्रमातामही (परनानी) अमुकी देवी दा रुद्ररूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा

१-'षड् वा ऋतवः पितरः' इति श्रुतेः।

****

नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मद्वृद्धप्रमातामही (बूढ़ी परनानी) अमुकी देवी दा आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ ३ ॥

पत्न्यादितर्पण

अमुकगोत्रा अस्मत्पत्नी (भार्या) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सुतः (बेटा) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्कन्या (बेटी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्पितृव्यः (पिताके भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मन्मातुलः (मामा) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्भ्राता (अपना भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिल जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सापत्नभ्राता (सौतेला भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्पितृभगिनी (बूआ) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रा अस्मन्मातृभगिनी (मौसी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रा अस्मदात्मभगिनी (अपनी बहिन) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं

****

जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्सापत्नभगिनी (सौतेली बहिन) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥ १ ॥ अमुकगोत्रः अस्मच्छ्वशुरः (श्वशुर) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्गुरुः अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मदाचार्यपत्नी अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ २ ॥ अमुकगोत्रः अस्मच्छिष्यः वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सखा अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मदाप्तपुरुषः अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥ ३ ॥

इसके बाद सव्य होकर पूर्वाभिमुख हो नीचे लिखे श्लोकोंको पढ़ते हुए जल गिरावे—

देवासुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः ।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया ॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥

'देवता, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक,

सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्षवर्ग, पक्षी, जलचर तथा थलचर जीव और वायुके आधारपर रहनेवाले जन्तु—ये सभी मेरे दिये हुए जलसे शीघ्र तृप्त हों। जो समस्त नरकों तथा वहाँकी यातनाओंमें पड़े-पड़े दुःख भोग रहे हैं, उनको पुष्ट तथा शान्त करनेकी इच्छासे मैं यह जल देता हूँ। जो मेरे बान्धव न रहे हों, जो इस जन्ममें बान्धव रहे हों अथवा किसी दूसरे जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों; वे सब तथा इनके अतिरिक्त भी जो मुझसे जल पानेकी इच्छा रखते हों, वे भी मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों।'

ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन वारिणा॥

'ब्रह्माजीसे लेकर कीटोंतक जितने जीव हैं, वे तथा देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और माता, नाना आदि पितृगण—ये सभी तृप्त हों, मेरे कुलकी बीती हुई करोड़ों पीढ़ियोंमें उत्पन्न हुए जो-जो पितर ब्रह्मलोकपर्यन्त सात द्वीपोंके भीतर कहीं भी निवास करते हों, उनकी तृप्तिके लिये मेरा दिया हुआ यह तिलमिश्रित जल उन्हें प्राप्त हो। जो मेरे बान्धव न रहे हों, जो इस जन्ममें या किसी दूसरे जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सभी मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हो जायँ।'

वस्त्र-निष्पीडन[१]

तत्पश्चात् वस्त्रको चार आवृत्ति लपेटकर जलमें डुबावे और बाहर ले आकर निम्नाङ्कित मन्त्रको पढ़ते हुए अपसव्य-भावसे अपने बायें भागमें भूमिपर उस वस्त्रको निचोड़े। (पवित्रकको तर्पण किये हुए जलमें छोड़ दे। यदि घरमें किसी मृत पुरुषका वार्षिक श्राद्ध आदि कर्म हो तो वस्त्र-निष्पीडन नहीं करना चाहिये।) वस्त्र-निष्पीडनका मन्त्र यह है—

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥

भीष्मतर्पण

इसके बाद दक्षिणाभिमुख हो पितृतर्पणके समान ही जनेऊ अपसव्य करके हाथमें कुश धारण किये हुए ही बालब्रह्मचारी भक्त-प्रवर भीष्मके लिये पितृतीर्थसे तिलमिश्रित जलके द्वारा तर्पण करे।

१-वस्त्र-निष्पीडनके विषयमें स्मृतियोंके वचन—

योगियाज्ञवल्क्यः—वस्त्रनिष्पीडितं तोयं स्नातस्योच्छिष्टभागिनः।
भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत् स्थले॥

वस्त्र निचोड़नेसे जो जल निकलता है, वह स्नान करनेवाले पुरुषके 'उच्छिष्टभागी जीवोंका भाग है; ऐसा श्रुति कहती है।' अतः उसे स्थलमें निचोड़ना चाहिये।

वृद्धयोगी—यावदेतानृषींश्चैव पितॄंश्चापि न तर्पयेत्।
तावन्न पीडयेद् वस्त्रं येन स्नातो भवेन्नरः॥

जबतक इन ऋषियों और पितरोंका तर्पण न कर ले, तबतक मनुष्य उस वस्त्रको न निचोड़े जिसे पहनकर उसने स्नान किया हो।

स्मृत्यन्तरे—वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य पीडयेच्च जलाद् बहिः।
वामकोष्ठे विनिक्षिप्य द्विराचम्य शुचिर्भवेत्॥

वस्त्रको चार आवृत्ति लपेटकर उसे जलसे बाहर ले जाकर निचोड़े। फिर उसे बायीं कलाईपर रखकर दो बार आचमन करके पवित्र हो जाय।

उनके लिये तर्पणका मन्त्र निम्नाङ्कित श्लोक है—

वैयाघ्रपदगोत्राय साङ्कृतिप्रवराय च।
गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम्।
अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे॥

अर्घ्यदान

फिर शुद्ध जलसे आचमन करके प्राणायाम करे। तदनन्तर यज्ञोपवीत बायें कंधेपर करके एक पात्रमें शुद्ध जल भरकर उसके मध्यभागमें अनामिकासे षड्दल-कमल[1] बनावे और उसमें श्वेत चन्दन, अक्षत, पुष्प तथा तुलसीदल छोड़ दे। फिर दूसरे पात्रमें चन्दनसे षड्दल-कमल बनाकर उसमें पूर्वादि दिशाके क्रमसे ब्रह्मादि देवताओंका आवाहन-पूजन करे तथा पहले पात्रके जलसे उन पूजित देवताओंके लिये अर्घ्य अर्पण करे। अर्घ्यदानके मन्त्र निम्नाङ्कित हैं—

ॐ ब्रह्म[2] जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः (यजु० १३। ३)। **ॐ ब्रह्मणे नमः। ब्रह्माणं पूजयामि॥**

१-षड्दल-कमल

२-अत्र ब्रह्मशब्दोपादानाल्लिङ्गाद् ब्रह्मणः स्तवनम्।

'सर्वप्रथम पूर्व दिशासे प्रकट होनेवाले आदित्यरूप ब्रह्मने भूगोलके मध्यभागसे आरम्भ करके इन समस्त सुन्दर कान्तिवाले लोकोंको अपने प्रकाशसे व्यक्त किया है तथा वह अत्यन्त कमनीय आदित्य इस जगत्की निवासस्थानभूत अवकाशयुक्त दिशाओंको, विद्यमान—मूर्तपदार्थके स्थानोंको और अमूर्त्त वायु आदिके उत्पत्तिस्थानोंको भी प्रकाशित करता है।'

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्यपाँ्सुरे स्वाहा ॥ (यजु० ५। १५) **ॐ विष्णवे नमः। विष्णुं पूजयामि ॥**

'सर्वव्यापी त्रिविक्रम (वामन) अवतारधारी भगवान् विष्णुने इस चराचर जगत्को विभक्त करके [चरणोंसे] आक्रान्त किया है। उन्होंने पृथ्वी, आकाश और द्युलोक—इन तीनों स्थानोंमें अपना चरण स्थापित किया है [अथवा उक्त तीनों स्थानोंमें वे क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्यरूपसे स्थित हैं]। इन विष्णुभगवान्के चरणमें समस्त विश्व अन्तर्भूत है। हम इनके निमित्त स्वाहा (हविष्यदान) करते हैं।'

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ (यजु० १६। १) **ॐ रुद्राय नमः। रुद्रं पूजयामि ॥**

'हे रुद्र! आपके क्रोध और बाणको नमस्कार है तथा आपकी दोनों भुजाओंको नमस्कार है।'

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (यजु० ३६। ३) **ॐ सवित्रे नमः। सवितारं पूजयामि ॥**

'हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय सूर्यस्वरूप परमेश्वरके भजनेयोग्य तेजका ध्यान करते हैं, जो कि हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करते रहते हैं।'

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवोदेवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्॥ (यजु० ११। ६२) **ॐ मित्राय नमः। मित्रं पूजयामि॥**

'मनुष्योंका पोषण करनेवाले दीप्तिमान् मित्रदेवताका यह रक्षण-कार्य सनातन, यशरूपसे प्रसिद्ध, विचित्र तथा श्रवण करनेके योग्य है।'

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके॥ (यजु० २१। १) **ॐ वरुणाय नमः। वरुणं पूजयामि॥**

'हे संसार-सागरके अधिपति वरुणदेव! अपनी रक्षाके लिये मैं आपको बुलाना चाहता हूँ; आप मेरे इस आवाहनको सुनिये और [यहाँ शीघ्र पधारकर] आज हमें सब प्रकारसे सुखी कीजिये।'

सूर्योपस्थान

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर सूर्योपस्थान (सूर्यको प्रणाम एवं प्रार्थना) करे—

ॐ अदृश्रमस्य केतवो विरश्मयो जनाँ २ अनु भ्राजन्तो अग्नयो यथा। उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम्॥ (यजु० ८। ४०) **ह ँ॒ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥**

(यजु० १०। १४)

****

'प्रज्ञाकी हेतुभूत एवं सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान करानेवाली इन सूर्यदेवकी किरणें समस्त प्राणियोंके भीतर विशेषरूपसे अनुगत (ख्यात) देखी गयी हैं, जैसे देदीप्यमान अग्नि सर्वत्र व्याप्त देखी जाती है। हे सोम ! तुम उपयामपात्रद्वारा गृहीत हो, मैं दीप्तिमान् सूर्यदेवके निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ। यह तुम्हारा स्थान है। मैं दीप्तिशाली भगवान् सूर्यदेवके लिये तुम्हें इस स्थानपर रखता हूँ। हे अत्यन्त देदीप्यमान सूर्यदेव ! जिस प्रकार तुम सब देवताओंमें अत्यन्त प्रकाशमान हो, उसी प्रकार तुम्हारे प्रकाशसे मैं भी मनुष्योंमें अत्यन्त प्रकाशमान होऊँ। (यजु० ८। ४०) हे सूर्यभगवान् ! आप अहंकारका नाश करनेवाले (हंस), प्रकाशमें गमन करनेवाले (शुचिषत्), अपनेमें सबको निवासित करनेवाले (वसु), वायुरूपसे अन्तरिक्षमें गमन करनेवाले (अन्तरिक्षसत्), देवोंको बुलानेवाले (होता), अग्निरूपसे वेदीपर स्थित होनेवाले (वेदिषत्), सबके पूजनीय (अतिथि), यज्ञशालामें आहवनीयादि अग्निरूपसे प्राप्त होनेवाले (दुरोणसत्), प्राणरूपसे मनुष्योंमें विचरनेवाले (नृषत्), श्रेष्ठ स्थानोंमें गमन करनेवाले (वरसत्), यज्ञमें प्राप्त होनेवाले (ऋतसत्) और आकाशमें विचरनेवाले (व्योमसत्) हैं तथा आप जलमें उत्पन्न होनेवाले (अब्जा), चार प्रकारके प्राणियोंके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाले (गोजा), सत्यसे उत्पन्न होनेवाले (ऋतजा), पर्वतोंमें होनेवाले (अद्रिजा) एवं सत्यस्वरूप और महान् हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'

इसके पश्चात् दिग्देवताओंको पूर्वादि क्रमसे नमस्कार करे—

'ॐ इन्द्राय नमः' प्राच्यै ॥ 'ॐ अग्नये नमः' आग्नेय्यै ॥

'ॐ यमाय नमः' दक्षिणायै ॥'ॐ निर्ऋतये नमः' नैर्ऋत्यै ॥
'ॐ वरुणाय नमः' पश्चिमायै ॥ 'ॐ वायवे नमः' वायव्यै ॥
'ॐ सोमाय नमः' उदीच्यै ॥ 'ॐ ईशानाय नमः ऐशान्यै ॥
'ॐ ब्रह्मणे नमः' ऊर्ध्वायै ॥ 'ॐ अनन्ताय नमः' अधरायै ॥

इसके बाद जलमें नमस्कार करे—

ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ अग्नये नमः । ॐ पृथिव्यै नमः । ॐ ओषधिभ्यो नमः । ॐ वाचे नमः । ॐ वाचस्पतये नमः । ॐ महद्भ्यो नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ अद्भ्यो नमः । ॐ अपाम्पतये नमः । ॐ वरुणाय नमः ।

मुखमार्जन

फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर शुद्ध जलसे मुँह धो डाले—

ॐ संवर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा स ँ्शिवेन त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायाऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ।

(यजु० २ । २४)

'हम ब्रह्मतेजसे, क्षीर आदि रससे, कर्म करनेमें समर्थ सुदृढ़ अङ्गोंसे और शान्त मनसे संयुक्त हों। सम्यक् प्रकारसे दान करनेवाले त्वष्टा देवता हमें धन दें और हमारे शरीरमें जो शक्ति आदिकी न्यूनता आ गयी है, उसका मार्जन करें' [अर्थात् हमारे धन और शरीरकी पुष्टि करें] ।

विसर्जन

निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर देवताओंका विसर्जन करे—

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ।
मनसस्पत इमं देव यज्ञ ँ् स्वाहा वाते धाः ॥

(यजु० ८ । २१)

'हे यज्ञवेत्ता देवताओ ! आपलोग हमारे इस तर्पणरूपी यज्ञको समाप्त जानकर अपने गन्तव्यमार्गको पधारें। हे चित्तके प्रवर्तक परमेश्वर ! मैं इस यज्ञको आपके हाथमें अर्पण करता हूँ। आप इसे वायु देवतामें स्थापित करें।'

समर्पण

निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर यह तर्पणकर्म भगवान्‌को समर्पित करे—

अनेन यथाशक्तिकृतेन देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणाख्येन कर्मणा भगवान् मम समस्तपितृस्वरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु। ॐ विष्णवे नमः।

॥ इति ॥

देवपूजाकी संक्षिप्त विधि

अपने-अपने इष्टदेवकी षोडश उपचारोंसे पूजा करनेका क्रम लिखा जा रहा है। जो भगवान्‌के जिस स्वरूपका उपासक हो, उसको अपने उसी उपास्यदेवके नाम-मन्त्रसे इन उपचारोंको अर्पण करना चाहिये। जैसे भगवान् श्रीनारायणकी पूजाके समय **'श्रीनारायणाय नमः'** इस मन्त्रका उपयोग करना चाहिये। इसी प्रकार शिवजीके लिये **'श्रीशिवाय नमः'**, दुर्गाजीके लिये **'श्रीदुर्गायै नमः'**, गणेशजीके लिये **'श्रीगणेशाय नमः'** इत्यादिरूपसे नाम-मन्त्रका उपयोग करना चाहिये। जिन्हें पुरुषसूक्तके षोडशमन्त्र याद हों, उन्हें प्रथम मन्त्रसे प्रथम उपचार, द्वितीयसे द्वितीय उपचार—इसी प्रकार सोलह मन्त्रोंसे सोलह उपचार अर्पण करने चाहिये। षोडश उपचार ये हैं—

१-आवाहन, २-आसन, ३-पाद्य, ४-अर्घ्य, ५-आचमनीय, ६-स्नान, ७-वस्त्र, ८-यज्ञोपवीत, ९-गन्ध, १०-पुष्प-तुलसी-दलादि, ११-धूप, १२-दीप, १३-नैवेद्य और आचमन, १४-दक्षिणायुक्त ताम्बूल, १५-आरार्तिपूर्वक परिक्रमा और १६-मन्त्र-पुष्पयुक्त नमस्कार।

पूजनक्रम

हरिः ॐ। सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमि ँ् सर्व्वतस्प्पृत्त्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्॥

****

आगच्छ भगवन्देव स्थाने चात्र स्थिरो भव।
यावत्पूजां करिष्यामि तावत्त्वं सन्निधो भव॥
ॐ भगवन्तं श्रीनारायणमावाहयामि स्थापयामि।

—इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् नारायणका आवाहन करे। इसके बाद—

रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम्।
आसनं च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥
ॐ इदमासनं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—इस मन्त्रको पढ़कर श्रीहरिके लिये आसन दे।

उष्णोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम्।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम्॥
ॐ पादयोः पाद्यं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—इस मन्त्रका उच्चारणकर भगवान्‌के चरणकमलोंको धोकर उस जलको अपने मस्तकपर धारण करना चाहिये।

अर्घ्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः सह।
करुणाकर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
ॐ हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—इस मन्त्रको पढ़कर श्रीहरिके कर-कमलोंमें पवित्र जल छोड़ना चाहिये।

सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धिं निर्मलं जलम्।
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर॥
ॐ मुखे आचमनीयं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—यह मन्त्र कहकर श्रीनारायणदेवको आचमन कराना चाहिये।

गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्तिं कुरुष्व मे ॥
ॐ स्नानार्थं जलं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र कहकर भगवान्‌को शुद्ध जलसे स्नान करावे।

पयो दधि घृतं चैव मधु च शर्करायुतम् ।
पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ पञ्चामृतेन पश्चाच्छुद्धोदकेन स्नपयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र पढ़कर पहले पञ्चामृतसे फिर शुद्ध जलसे भगवान्‌को स्नान करावे।

मलयाचलसम्भूतं चन्दनागुरुसम्भवम् ।
चन्दनं देवदेवेश स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ गन्धोदकेन तत्पश्चाच्छुद्धोदकेन च स्नपयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र पढ़कर पहले चन्दनमिश्रित जलसे फिर शुद्ध जलसे भगवान्‌को स्नान करावे।

सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं गृह्यतां वाससी शुभे ॥
ॐ वस्त्रं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र कहकर श्रीहरिको वस्त्र अर्पण करे।

नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं चोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ यज्ञोपवीतं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र पढ़कर भगवान्‌को यज्ञोपवीत पहनावे।

श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ गन्धं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र पढ़कर भगवान्‌को चन्दन-रोली आदि लगाना चाहिये।

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयाऽऽनीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर ॥
ॐ पुष्पं पुष्पमालां च समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र कहकर भगवान्‌के मस्तकपर और नासिकाके सामने आकाशमें पुष्प छोड़ना तथा भगवान्‌के गलेमें माला पहनानी चाहिये।

तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥
ॐ तुलसीदलं निवेदयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र कहकर भगवान्‌को तुलसीदल अर्पण करे।

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ धूपमाघ्रापयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र पढ़कर भगवान्‌के सम्मुख अग्निमें धूप छोड़े।

आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥
ॐ दीपं दर्शयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः ।

—यह मन्त्र पढ़कर घीका दीपक जलाकर भगवान्‌के सामने रखना चाहिये और हाथ धो लेना चाहिये।

शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम्।
उपहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

ॐ नैवेद्यं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—इस मन्त्रसे मिश्री, मिठाई और फल आदि भगवान्‌को अर्पण करना चाहिये।

एलोशीरलवङ्गादिकर्पूरपरिवासितम्।
प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर॥

ॐ नैवेद्यान्ते आचमनीयं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—इस मन्त्रसे भगवान्‌को आचमन कराना चाहिये।

पूगीफलं महद् दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

ॐ एलालवङ्गकर्पूरादिसहितं ताम्बूलं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—यह मन्त्र पढ़कर इलायची, लवङ्ग और कर्पूर आदिसहित ताम्बूल भगवान्‌के लिये अर्पण करे।

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

ॐ दक्षिणां समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—यह मन्त्र पढ़कर भगवान्‌को दक्षिणा अर्पण करे।

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम्।
आरार्तिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव॥

ॐ कर्पूरार्तिक्यं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—यह मन्त्र पढ़कर किसी शुद्ध पात्रमें कर्पूरको प्रदीप्त करके श्रीनारायणदेवकी आरती उतारनी चाहिये, उस समय

भगवत्प्रार्थना-सम्बन्धी मन्त्र या श्लोक भी पढ़ने चाहिये।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि वै।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे॥

ॐ प्रदक्षिणां समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—यह मन्त्र पढ़कर भगवान्‌की चार[1] बार प्रदक्षिणा करे।

नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥

ॐ मन्त्रपुष्पाञ्जलियुक्तं नमस्कारं समर्पयामि भगवते श्रीनारायणाय नमः।

—यह मन्त्र पढ़कर सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंसे अञ्जलि भरकर श्रीहरिको समर्पण करना चाहिये तथा अष्टाङ्ग प्रणाम भी करना चाहिये। प्रणामके समय निम्नाङ्कित श्लोक पढ़े—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

'जिनकी आकृति परम शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए हैं, जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जो

१-एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके।
हरेश्चतस्रः कर्तव्या शिवस्यार्धप्रदक्षिणा॥

'भगवती दुर्गाकी एक बार, सूर्य-प्रतिमाकी सात बार, गणेशजीकी तीन बार, भगवान् विष्णुकी चार बार और शंकरजीकी आधी प्रदक्षिणा करनी चहिये।'

देवताओंके भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगत्के आधार हैं, जो आकाशके समान सर्वत्र व्यापक, मेघके समान श्यामवर्ण और सुन्दर अङ्गोंवाले हैं, योगीलोग ध्यानमें जिनके स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं, जो संसार-भयको दूर करनेवाले और समस्त लोकोंके एकमात्र ईश्वर हैं, उन कमलनयन लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ।'

इस प्रकार भगवान्को प्रणाम करके निम्नाङ्कित वाक्य कहकर यह पूजन-कर्म उन्हें समर्पित करे—

ॐ अनेन यथाशक्तिकृतेन षोडशोपचारद्वारापूजनेन भगवान् श्रीनारायणः प्रीयताम् न मम।

इस प्रकार यह भगवान् श्रीनारायणदेवकी पूजा हुई। इसी प्रकार शिव, शक्ति आदि अन्य इष्टदेवोंकी भी पूजा करनी चाहिये।

॥ इति ॥

बलिवैश्वदेवविधि

उपक्रम

द्विजोंको प्रतिदिन पञ्च-महायज्ञ करनेके लिये शास्त्रकी आज्ञा है। प्रत्येक गृहस्थके यहाँ चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और जलका घड़ा—ये पाँच हिंसाके स्थान हैं। इनका उपयोग करनेसे अनजानमें इच्छा न रहते हुए भी कुछ जीवोंकी हिंसा हो जाया करती है; इस हिंसा-दोषको दूर करनेके लिये पञ्च-महायज्ञोंका विधान है[१]। इन यज्ञोंके नाम ये हैं—१-ब्रह्मयज्ञ, २-देवयज्ञ, ३-भूतयज्ञ, ४-पितृयज्ञ और ५-मनुष्ययज्ञ। ब्रह्मयज्ञको ऋषियज्ञ और स्वाध्याययज्ञ भी कहते हैं। मुख्यतः प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करनेसे ब्रह्मयज्ञ सम्पन्न होता है, परंतु याज्ञवल्क्यजीकी सम्मतिके अनुसार वेदोंके अतिरिक्त पुराण, महाभारत, अध्यात्मविद्या, गीता एवं उपनिषदादिका पाठ अथवा श्रवण करनेसे भी ब्रह्मयज्ञ सम्पन्न होता है। यह सब न हो सकनेकी अवस्थामें गायत्री-जपमात्रसे भी ब्रह्मयज्ञकी पूर्ति हो जाती है। ब्रह्मयज्ञके पालनसे द्विज ऋषि-ऋणसे मुक्त होकर ज्ञान प्राप्त करता है और इस प्रकार वह सहज ही परमात्मप्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। प्रातःकालिक होमके पश्चात् तर्पणके पहले या बलिवैश्वदेवके

१-पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥
(मनु० ३। ६८-६९)

बाद ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये[१]। ब्रह्मयज्ञको छोड़कर शेष चार देवयज्ञ आदि संक्षेपसे वैश्वदेव कर्ममें ही आ जाते हैं; अतः प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक वैश्वदेव-कर्म अवश्य करना चाहिये।

देवताओंके निमित्त अग्निमें हवन करना देवयज्ञ कहलाता है। सृष्टिके आदिसे ही देवतालोग मनुष्योंको सुख पहुँचानेके लिये, उनकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके निमित्त पशु, पक्षी, तृण, वृक्ष, औषध आदिके सहित सबकी पुष्टि कर रहे हैं तथा अन्न, जल, पुष्प, फल, धातु आदि मनुष्योपयोगी समस्त वस्तुएँ मनुष्योंको दे रहे हैं। जो मनुष्य उन वस्तुओंको, उन देवताओंका ऋण चुकाये बिना—उनका न्यायोचित स्वत्व उन्हें अर्पण किये बिना स्वयं अपने काममें लाता है, वह कृतघ्न है। गीता (३।१२)में उसे चोर कहा गया है। देवयज्ञसे द्विजातिगण देवताओंका ऋण चुकाते हैं। समस्त देवताओंको परमात्माका ही स्वरूप समझकर उनके निमित्त हवन करना चाहिये— इससे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है।

धाता-विधाता आदि भूताधिष्ठातृदेवताओंके निमित्त अन्न अर्पण करना तथा कृमि, कीट, पतंग, पशु-पक्षी आदिके निमित्त भोज्यपदार्थ समर्पण करना भूतयज्ञ कहलाता है। भूतयज्ञके द्वारा सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक परमेश्वरका पूजन होता है; अतः इससे

१-यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञस्तु स स्मृतः।
स चार्वाक्तर्पणात् कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः॥
वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्र ह्यनिमित्तकात्॥ (याज्ञवल्क्य०)

द्विजोंको शीघ्र ही परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। परलोकगत पितरोंकी तृप्तिके लिये 'स्वधा' शब्दके उच्चारणपूर्वक अन्न-जल समर्पण करना पितृयज्ञ है। इससे पितर प्रसन्न होकर अपने कल्याणमय आशीर्वादसे यजमानको अनुगृहीत करते हैं। द्वारपर आये हुए अतिथिको अन्नादिसे तृप्त करना और सनकादि दिव्य मनुष्योंके निमित्त अन्न समर्पण करना मनुष्ययज्ञ है। इससे अतिथिरूपी नारायणदेवकी आराधना होती है, जो मानवमात्रके लिये कल्याणकारिणी है।

बलिवैश्वदेव प्रतिदिन एक ही बार होता है। श्राद्धके दिन साग्निकको श्राद्धके प्रथम और निरग्निकको भी श्राद्धके अन्तमें बलिवैश्वदेव करना चाहिये। नान्दीमुख-श्राद्धमें निरग्निकको भी श्राद्धके प्रथम ही बलिवैश्वदेव करना चाहिये। जननाशौच और मरणाशौचमें बलिवैश्वदेव नहीं होता है। पाकके अभावमें आमान्न, फल और शाक आदिसे भी बलिवैश्वदेव होता है। बलिवैश्वदेवमें उड़द, चना, मसूर, कोदो, कुल्थी, लवण, मटर, तैलपक्व, जुन्हरी, पर्युषित अन्न भुक्तशेष अन्न आदि वर्जित हैं।

बलिवैश्वदेवके प्रथम अतिथि-अभ्यागत उपस्थित हो जायँ तो बलिवैश्वदेवनिमित्त अन्नको पृथक् करके अतिथिको भिक्षा देनी चाहिये। यदि दो भाई परस्पर अलग हो जायँ, उनका पाक पृथक् होने लगे तो श्राद्ध और बलिवैश्वदेव भी उन्हें अलग-अलग करने चाहिये।[१] यदि पाक एक ही हो तो उनमेंसे

१-एकपाके निवसतां पितृदेवद्विजार्चनम्।
एकं भवेद् विभक्तानां तदेव स्याद् गृहे गृहे॥ (छान्दोग्यपरिशिष्ट)

जो ज्येष्ठ हो उसे ही करना चाहिये। घरमें अलग न होनेपर भी यदि एक भाई परदेशमें रहता हो तो उसे अलग ही श्राद्ध अथवा बलिवैश्वदेव करना चाहिये। नित्य बलिवैश्वदेव करनेसे मनुष्यके समस्त पाप दूर हो जाते हैं। बलिवैश्वदेवसे बचा हुआ अन्न यज्ञशिष्ट अन्न है। यह अमृतके समान माना गया है। जो केवल अपने लिये भोजन बनाते हैं, वे पापभोगी हैं[१]। बलिवैश्वदेवके अनुष्ठानसे बहुत बड़ा लाभ और त्यागसे बहुत बड़ी हानि होती है—यह समझकर सभीको निरालस्यभावसे प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक बलिवैश्वदेव करना चाहिये।

बलिवैश्वदेवकी विधि यों है—पहले आचमन और प्राणायाम करके दायें हाथकी अनामिका अङ्गुलीमें **'ॐपवित्रे[२] स्थो वैष्णव्यौ०'** इस मन्त्रसे कुशाकी पवित्री धारण करे। तत्पश्चात् निम्नाङ्कित संकल्प पढ़े। (यह संकल्प मानसिक भी किया जा सकता है।)

हरिः ॐ तत्सत्[३] ···अद्य शुभपुण्यतिथौ मम गृहे पञ्चसूनाजनितसकलदोषपरिहारपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठान-सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बलिवैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्ये।

१-यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता ३। १३)

२-पूरा मन्त्र इस प्रकार है—ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥

३-शून्य स्थानपर संध्या और तर्पणके अनुसार देश, काल, नाम आदिकी योजना कर लेनी चाहिये।

इसके बाद लौकिक अग्नि प्रज्वलित करके अग्निदेवका निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए ध्यान करे।

ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश॥

(ऋ० अ० ३ अ० ८ व० १०)

'इस अग्निदेवके चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं। कामनाओंकी वर्षा करनेवाला यह महान् देव तीन स्थानोंमें बँधा हुआ शब्द करता है और प्राणियोंके भीतर जठरानलरूपसे प्रविष्ट है।'

फिर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर अग्निदेवको मानसिक आसन दे—

ॐ एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जना-स्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥

(यजु० ३२।४)

'यह अग्निस्वरूप परमात्मदेव ही सम्पूर्ण दिशा-विदिशाओंमें व्याप्त है। यही हिरण्यगर्भरूपसे सबसे प्रथम उत्पन्न (प्रकट) हुआ था, माताके गर्भमें भी यही रहता है और यही उत्पन्न होनेवाला है, हे मनुष्यो! यही सर्वव्यापक और सब ओर मुखोंवाला है।'

तत्पश्चात् अग्निदेवको नमस्कार करके एक पात्रमें बिना लवण (लोन) का सुपक्व अन्न रख ले और यज्ञोपवीतको सव्यभावमें रखे हुए ही दायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर अन्नकी पाँच आहुतियाँ नीचे लिखे पाँच मन्त्रोंको क्रमशः पढ़ते हुए

बारी-बारीसे अग्निमें छोड़े। (अग्निके अभावमें एक पात्रमें जल रखकर उसीमें आहुतियाँ छोड़ सकते हैं।)

(१) देवयज्ञ

१	२
५	अग्नि
४	३

१—ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम[१]।
२—ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।
३—ॐ गृह्याभ्यः स्वाहा, इदं गृह्याभ्यो न मम।
४—ॐ कश्यपाय स्वाहा, इदं कश्यपाय न मम।
५—ॐ अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये न मम।

पुनः अग्निके पास ही पानीसे एक चौकोना चक्र बनाकर उसका द्वार पूर्वकी ओर रखे और उसीमें बतलाये जानेवाले स्थानोंपर क्रमशः बीस ग्रास अन्न देना चाहिये। जिज्ञासुओंकी सुविधाके लिये नकशा और ग्रास अर्पण करनेके मन्त्र नीचे दिये जाते हैं। नकशेमें केवल अङ्क रखा गया है, उसमें जहाँ एक है, वहाँ प्रथम ग्रास और दोकी जगह दूसरा ग्रास देना चाहिये। इसी प्रकार तीनसे चलकर बीसतक क्रमशः निर्दिष्ट स्थानपर ग्रास देना उचित है। नकशेके नीचे क्रमशः बीस मन्त्र दिये जाते हैं, एक-एक मन्त्र पढ़कर एक-एक ग्रास अर्पण करना चाहिये।

१-प्रथम मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है— 'ब्रह्माजीके लिये इस अन्नका हवन किया जाता है, यह ब्रह्माजीके लिये ही प्राप्त हो, इसपर मेरा अधिकार नहीं है' इसी प्रकार अन्य मन्त्रोंका अर्थ समझना चाहिये। २, ३, ४ और ५में क्रमशः प्रजापति, गृह्या, कश्यप तथा अनुमतिके लिये हवन किया गया है।

(२) भूतयज्ञ[1]

१—ॐ धात्रे नमः, इदं धात्रे न मम।
२—ॐ विधात्रे नमः, इदं विधात्रे न मम।
३—ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
४—ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
५—ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
६—ॐ वायवे नमः, इदं वायवे न मम।
७—ॐ प्राच्यै नमः, इदं प्राच्यै न मम।
८—ॐ अवाच्यै नमः, इदमवाच्यै न मम।
९—ॐ प्रतीच्यै नमः, इदं प्रतीच्यै न मम।
१०—ॐ उदीच्यै नमः, इदमुदीच्यै न मम।
११—ॐ ब्रह्मणे नमः, इदं ब्रह्मणे न मम।
१२—ॐ अन्तरिक्षाय नमः, इदमन्तरिक्षाय न मम।
१३—ॐ सूर्याय नमः, इदं सूर्याय न मम।

१-यज्ञोपवीतको सव्य करके पके हुए अन्नके १७ ग्रास अङ्कित मण्डलमें यथायोग्य स्थानपर नीचे लिखे हुए मन्त्रोंद्वारा क्रमशः छोड़ दे।

१४—ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम।

१५—ॐ विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो न मम।

१६—ॐ उषसे नमः, इदमुषसे न मम।

१७—ॐ भूतानां पतये नमः, इदं भूतानां पतये न मम।

(३) पितृयज्ञ[१]

१८—ॐ पितृभ्यः स्वधा नमः, इदं पितृभ्यः स्वधा न मम।

निर्णेजनम्[२]

१९—ॐ यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः, इदं यक्ष्मणे न मम।

(४) मनुष्ययज्ञ[३]

२०—ॐ हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो नमः, इदं हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो न मम।

(१) गोबलि

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए सव्यभावसे ही गौओंके लिये बलि अर्पण करे—

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥
इदं गोभ्यो न मम।

१-यज्ञोपवीतको अपसव्य करके बायें घुटनेको पृथ्वीपर रख दक्षिणकी ओर मुख करके हो सके तो साथमें तिल लेकर, पक्व-अन्न अङ्कित मण्डलमें निर्दिष्ट स्थानपर मन्त्र पढ़कर रख दे।

२-यज्ञोपवीतको सव्य करके अन्नके पात्रको धोकर वह जल अङ्कित मण्डलमें १९वें अङ्ककी जगह मन्त्रको पढ़कर छोड़ दे।

३-यज्ञोपवीतको मालाकी भाँति कण्ठमें करके उत्तराभिमुख हो पक्व-अन्न अङ्कित मण्डलमें २०वें अङ्ककी जगह मन्त्रद्वारा छोड़ दे।

****

(२) कुक्कुरबलि

फिर यज्ञोपवीतको कण्ठमें मालाकी भाँति करके कुत्तोंके लिये ग्रास दे। मन्त्र यह है—

ॐ द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ॥
इदं श्वभ्यां न मम।

(३) काकबलि

पुनः यज्ञोपवीतको अपसव्य करके नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ते हुए कौओंके लिये भूमिपर ग्रास दे।

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयोज्झितम्॥
इदं वायसेभ्यो न मम।

(४) देवादिबलि

फिर सव्यभावसे निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर देवता आदिके लिये अन्न अर्पण करे—

ॐ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
इदमन्नं देवादिभ्यो न मम।

(५) पिपीलिकादिबलि

इसी प्रकार निम्नाङ्कित मन्त्रसे चींटी आदिके लिये अन्न दे—

ॐ पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥
इदमन्नं पिपीलिकादिभ्यो न मम।

इसके बाद सव्यभावसे पूर्वाभिमुख होकर पवित्र भूमिपर थोड़ा अन्न तथा जल रखकर हाथ जोड़ निम्नाङ्कित श्लोकोंको पढ़े—

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरगभूतसङ्घाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकायभूत-
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥

'देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, नाग, अन्य भूतसमूह, प्रेत, पिशाच तथा सम्पूर्ण वृक्ष एवं चींटी, कीड़े और पतंग आदि जीव जो कर्म-बन्धनमें बँधे हुए भूखसे कष्ट पा रहे हों और मुझसे अन्न चाहते हों, उनके लिये यह अन्न मैंने रख छोड़ा है; इससे उनकी तृप्ति हो और वे सुखी हों। सब जीव, यह अन्न और मैं—सब विष्णु ही हैं, उनसे अन्य कुछ भी नहीं है, इस कारण मैं जीवोंके शरीरकी उत्पत्ति और पोषणमें हेतुभूत इस अन्नको उन प्राणियोंकी रक्षाके लिये देता हूँ। यह जो चौदह

प्रकारका भूतोंका समुदाय है, इसमें जो सम्पूर्ण जीव-समूह स्थित है, उनकी तृप्तिके लिये मैंने यह अन्न दिया है, वे प्रसन्नं हों।'

तदनन्तर हाथ धोकर भस्म लगावे और निम्नाङ्कित मन्त्रसे अग्निका विसर्जन करे—

ॐ यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा। एष ते यज्ञो यज्ञपटे सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा॥

(यजु० सं० ८।२२)

'हे यज्ञ ! तू [अपनी प्रतिष्ठाके लिये] यज्ञस्वरूप विष्णु-भगवान्‌को प्राप्त हो, कर्मकें फलरूपसे यज्ञपति-यजमानको प्राप्त हो तथा अपनी सिद्धिके लिये तू अपने कारणभूत—वायुदेवकी क्रिया—शक्तिको प्राप्त हो, यह हवन सुन्दररूपसे सम्पन्न हो। हे यजमान ! स्तवनीय चरु, पुरोडाश आदि सब अङ्गों तथा सूक्त, अनुवाक और स्तोत्रोंके सहित यह किया जानेवाला यज्ञ तुम्हारा हो, तुम इस यज्ञका सेवन करो। यह हवनकर्म सुन्दररूपसे सम्पन्न हो।'

तत्पश्चात् कर्ममें न्यूनताकी पूर्तिके लिये निम्नाङ्कित श्लोकोंको पढ़ते हुए भगवान्‌से प्रार्थना करे—

ॐ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥[1]

१-इन दो श्लोकोंका अर्थ पृष्ठ ७२में आ चुका है।

फिर नीचे लिखे वाक्यको पढ़कर यह कर्म भगवान्‌को अर्पण करे[१]।

अनेन वैश्वदेवाख्येन कर्मणा श्रीयज्ञनारायणस्वरूपी परमेश्वरवासुदेवः प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु। ॐ विष्णवे नमः ॥ ३ ॥

॥ इति ॥

१-अन्तमें अर्पण किये हुए ग्रासोंको बाहर ले जाकर गौ आदिको दे और हाथ-पैर धोकर शुद्ध हो जाय।

ब्रह्मयज्ञविधि

अब संक्षेपमें ब्रह्मयज्ञकी विधि दी जा रही है। जिससे इतनी भी पालित न हो सके, उसे गायत्री-मन्त्रका जप करके ब्रह्मयज्ञकी पूर्ति कर लेनी चाहिये।

सर्वप्रथम हाथमें पवित्री धारणकर जल ले, संध्या-तर्पण आदिमें लिखे संकल्पके अनुसार देश, काल और नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करके **'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यथाशक्ति-ब्रह्मयज्ञेनाहं यक्ष्ये।'** इस प्रकार संकल्प पढ़े और फिर नीचे लिखे प्रकारसे अङ्गन्यास करे।

ॐतिर्य्यग्बिलाय चमसोर्ध्वबुध्नाय छन्दः पुरुषाय नमः। शिरसि।

इसे पढ़कर दाहिने हाथसे सिरका स्पर्श करे।

ॐगौतमभरद्वाजाभ्यां नमः। नेत्रयोः।

यह दो बार पढ़कर दोनों नेत्रोंका स्पर्श करे।

ॐविश्वामित्रजमदग्निभ्यां नमः। श्रोत्रयोः।

इस वाक्यको दो बार पढ़कर दोनों कानोंका स्पर्श करे।

ॐवसिष्ठकश्यपाभ्यां नमः। नासापुटयोः।

इसे दो बार पढ़कर दोनों नासिकाछिद्रोंका स्पर्श करे।

ॐअत्रये नमः। वाचि।

यह पढ़कर वाक्-इन्द्रिय (मुख) का स्पर्श करे।

ॐगायत्र्यै छन्दसेऽग्नये नमः। शिरसि।

इस वाक्यका पाठ करके मस्तकका स्पर्श करे।

ॐउष्णिहे छन्दसे सवित्रे नमः। ग्रीवायाम्।

इस वाक्यको पढ़कर गलेका स्पर्श करे।

ॐबृहत्यै छन्दसे बृहस्पतये नमः। अनूके।

इसे पढ़कर पीठके बीचकी हड्डीका स्पर्श करे।

ॐ बृहद्रथन्तराभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां नमः। बाह्वोः।

इस वाक्यको दो बार पढ़कर दोनों भुजाओंका स्पर्श करे।

ॐ त्रिष्टुभे छन्दसे इन्द्राय नमः। मध्ये।

इससे उदरका स्पर्श करे।

ॐ जगत्यै छन्दसे आदित्याय नमः। श्रोण्योः।

इसे दो बार पढ़कर दोनों नितम्बोंका स्पर्श करे।

ॐ अतिच्छन्दसे प्रजापतये नमः। लिङ्गे।

इससे लिङ्ग-इन्द्रियका स्पर्श करे।

ॐ यज्ञा यज्ञियाय छन्दसे वैश्वानराय नमः। पायौ।

इससे गुदा-इन्द्रियका स्पर्श करे।

ॐ अनुष्टुभे छन्दसे विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ऊर्वोः।

इसे दो बार पढ़कर दोनों ऊरुओंका स्पर्श करे।

ॐ पङ्क्त्यै छन्दसे मरुद्भ्यो नमः। अष्ठीवतोः।

इस वाक्यको दो बार पढ़कर दोनों घुटनोंका स्पर्श करे।

ॐद्विपदायै छन्दसे विष्णवे नमः। पादयोः।

इस वाक्यको दो बार पढ़कर दोनों चरणोंका स्पर्श करे।

ॐ विच्छन्दसे वायवे नमः। प्राणेषु।

इससे नासिका छिद्रोंका स्पर्श करे।

ॐ न्यूनाक्षरायच्छन्दसे अद्भ्यो नमः। सर्वाङ्गेषु।

इस वाक्यसे दाहिने हाथके द्वारा बायें अङ्गका और बायें

हाथके द्वारा दाहिने अङ्गका सिरसे लेकर पैरोंतक स्पर्श करे[1]।

इसके बाद निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर विनियोग करे।

इषेत्त्वेत्यादि—खंब्रह्मान्तस्य माध्यन्दिनीयकस्य वाजसनेयकस्य यजुर्वेदाम्नायस्य विवस्वानृषिः गायत्र्यादीनि सर्वाणि छन्दांसि सर्वाणि यजूंषि सर्वाणि सामानि प्रतिलिङ्गोक्ता देवता ब्रह्मयज्ञारम्भे विनियोगः।

हरिः ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

ॐ इषे त्त्वोर्ज्जे त्त्वा व्वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्प्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माऽघशँ्सोध्रुवाऽअस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्य्यजमानस्य पशून्पाहि॥ १॥

(यजु० सं० १। १)

ॐव्रतमुपैष्यन्नन्तरेणाऽऽहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ्तिष्ठन्नपऽउपस्पृशति तद्यदपऽउपस्पृशत्यमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं व्वदति तेन पूतिरन्तरतो मेद्ध्या वाऽआपो मेध्यो भूत्वा व्व्रतमुपाऽयानीति पवित्रं वाऽआपः पवित्रपूतो व्व्रतमुपाऽयानीति तस्माद्वाऽअपऽउपस्पृशति।

(श० ब्रा० १। १। १। १)

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्॥

(ऋ० १। १। १)

१-नीचेके अङ्गोंका स्पर्श करनेपर हाथ धो लेना चाहिये।

ॐ अग्निऽआ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।

(साम० १।७)

ॐ शन्नो देवीरभीष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्त्रवन्तु नः॥ (अथर्व० १।१।१)

अथानुवाकान् वक्ष्यामि। मण्डलं दक्षिणमक्षि हृदयम्। अथातोऽधिकारः। फलयुक्तानि कर्माणि। अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म। अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि। पञ्च संवत्सरमयम्—म य र स त ज भ न। गौः। ग्मा, ज्मा। वृद्धिरादैच्। समाम्नायः समाम्नातः।

अथातो धर्मजिज्ञासा। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।
योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं प्रणम्य मुनयोऽब्रुवन्।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

उपर्युक्त उद्धरणोंका पाठ करके **'ब्रह्मणे नमः'** ऐसा तीन बार उच्चारण करे, फिर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर यह ब्रह्मयज्ञ भगवान्‌को समर्पित करे।

इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः।
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः॥

ॐ विष्णवे नमः॥ ३॥

॥ इति॥

संक्षिप्त भोजन-प्रयोग[१]

बलिवैश्वदेवके बाद अतिथि-पूजनादिसे निवृत्त होकर अपने कुटुम्बियोंके साथ भोजन करे। पहले **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस मन्त्रका उच्चारण करके अपने आगे जलसे चार अङ्गुलका चौकोना मण्डप बनावे और उसीपर भोजनपात्र रखकर उसमें घृतसहित व्यञ्जन रखावे तथा अपने दाहिने तरफ जलपात्र रखे, फिर भगवद्बुद्धिसे अन्नको प्रणाम करके—

१-भोजनके विषयमें ऋषियोंद्वारा बतायी हुई कुछ बातें नीचे दी जा रही हैं— दोनों पैर, दोनों हाथ और मुँह धोकर पूर्वकी ओर मुख करके मौनभावसे भोजन करे। जिसके माता-पिता जीवित हों वह दक्षिणकी ओर मुख करके भोजन न करे। भोजन करते समय बायें हाथसे अन्नका स्पर्श न करे और चरण, मस्तक तथा अण्डकोषको भी न छुए। केवल प्राणादिके लिये पाँच ग्रास अर्पण करते समयतक बायें हाथसे पात्रको पकड़े रहे, उसके बाद छोड़ दे। भोजनके समय हाथ घुटनोंके बाहर न करे। भोजनकालमें बायें हाथसे जलपात्र उठाकर दाहिने हाथकी कलाईपर रखकर यदि पानी पिये तो वह पात्र भोजन समाप्त होनेतक जूठा नहीं माना जाता—ऐसा मनुका कथन है। यदि भोजन करता हुआ द्विज किसी दूसरे भोजन करते हुए द्विजको छू दे तो दोनोंको ही भोजन छोड़ देना चाहिये। रात्रिको भोजन करते समय यदि दीप बुझ जाय तो भोजन रोक दे और अन्नका दायें हाथसे स्पर्श करते हुए मन-ही-मन गायत्रीका स्मरण करे। पुनः दीप जलानेके बाद ही भोजन आरम्भ करे। अधिक मात्रामें भोजन करनेसे आयु तथा आरोग्यका नाश होता है। उदरका आधा भाग अन्नसे भरे, चौथाई भाग जलसे भरे और एक चौथाई भाग वायुके आने-जानेके लिये खाली रखे। भोजनके बाद थोड़ी देरतक बैठे। फिर १०० कदम चलकर बायीं करवटसे कुछ देरतक लेटे रहे तो अन्न ठीक पचता है। भोजनके अन्तमें भगवान्‌को अर्पण किया हुआ तुलसीदल भक्षण करना चाहिये।

ॐ अग्निऽआ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।

(साम० १।७)

ॐ शन्नो देवीरभीष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ (अथर्व० १।१।१)

अथानुवाकान् वक्ष्यामि। मण्डलं दक्षिणमक्षि हृदयम्। अथातोऽधिकारः। फलयुक्तानि कर्माणि। अथातो गृह्यस्थाली पाकानां कर्म। अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि। पञ्च संवत्सरमयम्—म य र स त ज भ न। गौः। ग्मा, ज्मा। वृद्धिरादैच्। समाम्नायः समाम्नातः।

अथातो धर्मजिज्ञासा। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।
योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं प्रणम्य मुनयोऽब्रुवन्।
वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

उपर्युक्त उद्धरणोंका पाठ करके **'ब्रह्मणे नमः'** ऐसा तीन बार उच्चारण करे, फिर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर यह ब्रह्मयज्ञ भगवान्‌को समर्पित करे।

इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः।
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः॥

ॐ विष्णवे नमः॥ ३॥

॥ इति॥

संक्षिप्त भोजन-प्रयोग[1]

बलिवैश्वदेवके बाद अतिथि-पूजनादिसे निवृत्त होकर अपने कुटुम्बियोंके साथ भोजन करे। पहले **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** इस मन्त्रका उच्चारण करके अपने आगे जलसे चार अङ्गुलका चौकोना मण्डप बनावे और उसीपर भोजनपात्र रखकर उसमें घृतसहित व्यञ्जन रखावे तथा अपने दाहिने तरफ जलपात्र रखे, फिर भगवद्बुद्धिसे अन्नको प्रणाम करके—

१-भोजनके विषयमें ऋषियोंद्वारा बतायी हुई कुछ बातें नीचे दी जा रही हैं— दोनों पैर, दोनों हाथ और मुँह धोकर पूर्वकी ओर मुख करके मौनभावसे भोजन करे। जिसके माता-पिता जीवित हों वह दक्षिणकी ओर मुख करके भोजन न करे। भोजन करते समय बायें हाथसे अन्नका स्पर्श न करे और चरण, मस्तक तथा अण्डकोषको भी न छुए। केवल प्राणादिके लिये पाँच ग्रास अर्पण करते समयतक बायें हाथसे पात्रको पकड़े रहे, उसके बाद छोड़ दे। भोजनके समय हाथ घुटनोंके बाहर न करे। भोजनकालमें बायें हाथसे जलपात्र उठाकर दाहिने हाथकी कलाईपर रखकर यदि पानी पिये तो वह पात्र भोजन समाप्त होनेतक जूठा नहीं माना जाता—ऐसा मनुका कथन है। यदि भोजन करता हुआ द्विज किसी दूसरे भोजन करते हुए द्विजको छू दे तो दोनोंको ही भोजन छोड़ देना चाहिये। रात्रिको भोजन करते समय यदि दीप बुझ जाय तो भोजन रोक दे और अन्नका दायें हाथसे स्पर्श करते हुए मन-ही-मन गायत्रीका स्मरण करे। पुनः दीप जलानेके बाद ही भोजन आरम्भ करे। अधिक मात्रामें भोजन करनेसे आयु तथा आरोग्यका नाश होता है। उदरका आधा भाग अन्नसे भरे, चौथाई भाग जलसे भरे और एक चौथाई भाग वायुके आने-जानेके लिये खाली रखे। भोजनके बाद थोड़ी देरतक बैठे। फिर १०० कदम चलकर बायीं करवटसे कुछ देरतक लेटे रहे तो अन्न ठीक पचता है। भोजनके अन्तमें भगवान्‌को अर्पण किया हुआ तुलसीदल भक्षण करना चाहिये।